त्मा आनन्द स्वामी

एक ही रास्ता



◈ ओ३म् ◈

आनन्द-कथामाला-२

एक ही रास्ता

श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी के
सात दिन के उपदेशों का संग्रह



गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक	**गोविन्दराम हासानन्द** ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६
संस्करण	पन्द्रहवाँ मार्च, १९७८
मुद्रक	**अजय प्रिंटर्स** नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

मूल्य : ३.०० रुपये

आनन्द का अमृत

मनुष्य सहस्रों यत्न करता है, पसीना बहाता है। कुछ लोग तिजोरियों में रुपया जमा करते हैं और कुछ लोग बड़े महल बनवाते हैं, कोई भूषणों के ढेर एकत्रित करता है, कोई सन्तान के लिए पागल हुआ फिरता है। ऐसे भी व्यक्ति हैं जो शक्ति और शासन के लिए बेचैन हैं, परन्तु इन सब का उद्देश्य क्या है? क्यों वे सब इन बातों को करते हैं? धन, शक्ति, शासन, सन्तान, मकान, महल और भूषण स्वयं कुछ नहीं। मनुष्य उनके लिए प्रयत्न करता है तो इसलिए कि उसे आनन्द मिलेगा, परन्तु क्या आनन्द मिलता है? आनन्द का वास्तविक स्रोत तो ईश्वर है। उसे समझे और उसके निकट जाये बिना वास्तविक आनन्द आज तक किसी को न प्राप्त हुआ, न कभी होगा, और ये ज्ञान और उपासना सत्संग से प्राप्त होते हैं। इस विचार से मैंने पूज्य आनन्द स्वामी जी महाराज की कथा के एक-एक शब्द को एक बार लिखने का प्रयत्न किया। 'आनन्द गायत्री कथा' के नाम से भाषणों का यह संग्रह प्रकाशित हुआ। पढ़ने तथा सुननेवालों ने उसे इतना पसन्द किया कि कई भाषाओं में उसका अनुवाद हो गया। इस बात ने मुझे उत्साहित किया। दिल्ली की आर्यसमाज करौल-बाग में पूज्य स्वामी जी ने एक बार फिर कथा की। विषय था 'एक ही रास्ता'। मैंने इन भाषणों को उसी प्रकार लिखने का प्रयत्न किया जैसे 'आनन्द गायत्री कथा' को लिखने का किया था। आज वह आनन्द का अमृत आपके समक्ष है—पूज्य आनन्द स्वामी जी महाराज की अमृत वाणी। इसमें जो

कुछ अच्छा है, वह पूज्य स्वामी जी का है। यदि कहीं पर कोई त्रुटि है तो वह मेरी है। आनन्द के अमृत के चखते समय जो आनन्द आपको मिलेगा वह मेरे कारण नहीं। पूज्य स्वामी जी कथा करते हैं तो हृदय खोलकर रख देते हैं। उनकी आत्मा से अमृत की नदी बाहर आती हुई ज्ञात होती है। एक विचित्र शान्ति छा जाती है, प्रत्येक हृदय के अन्दर एक अनोखा आनन्द फैल जाता है, चहुँ ओर। उसी आनन्द को आप अनुभव करेंगे। उसके लिए पूज्य स्वामी जी को धन्यवाद दीजिए। यदि कहीं कोई त्रुटि है तो वह मेरे कारण है। इसके लिए मुझे एक तुच्छ सेवक जानकर क्षमा कर दीजिए।

'मिलाप' कार्यालय, नई दिल्ली —रणवीर
श्रीकृष्ण-जन्मदिन, संवत् २०१३



॥ ओ३म् ॥

पहला दिन

**ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥** सामवेद उ० ४ । २ । १३ । २ ॥

मेरी प्यारी माताओ और सज्जनो !

जैसा कि आपको अभी बताया गया है, जिस विषय के सम्बन्ध में मुझे कथा करनी है वह है 'एक ही रास्ता'। प्रातः-काल मैंने जब समाचारपत्रों को देखा और फिर शहर की दीवारों को देखा तो वहाँ कितनी ही जगहों पर लिखा पाया—'एक ही रास्ता'। मैंने समझा—करौलबाग आर्यसमाज ने बहुत रुपया बिना कारण ही खर्च कर दिया। कथा का विषय बताने के लिए इतने बड़े-बड़े विज्ञापन किसलिए दिये ? परन्तु बाद में पता चला कि वह कथा का विज्ञापन नहीं, किसी फ़िल्म का नाम है 'एक ही रास्ता', इसकी चर्चा उन विज्ञापनों में है। अब एक रास्ता वहाँ है, एक यहाँ। कौन-सा रास्ता ठीक है, वह हमें देखना है। परन्तु वहाँ और यहाँ का अन्तर, हो तो हो, रास्ता तो एक ही है, दूसरा नहीं; और यह वह रास्ता है जिसे हमारे देश की सरकार ने अपना आदर्श बनाया, जिसका वर्णन वेद, उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थ करते हैं। भारत सरकार का आदर्श है—

सत्यमेव जयते

'सदा सत्य की जय होती है।' और वेद, उपनिषद् और

ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं—

असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय ।। शतपथ १४ । ४ । १ । ३० ।।

'असत्य से सत्य की ओर ले चल ; अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल ; मृत्यु न दे, अमृत दे हमको ।' परन्तु यह मृत्यु, जिससे हम बचना चाहते हैं, क्या है ? प्रत्येक वस्तु जो उत्पन्न होती है, वह अवश्य नष्ट होती है । आपके लिए मृत्यु नहीं है, इसलिए इस मृत्यु का, जिसे हम मृत्यु कहते हैं, इसमें वर्णन नहीं है । मृत्यु का वास्तविक अर्थ है दुःख, कष्ट, क्लेश, बीमारी, ग़रीबी, भूख, व्यभिचार, दुराचार, अत्याचार, परतन्त्रता, भीरुता, कमज़ोरी, हार, घूस, ब्लैकमार्केट और इस प्रकार की दूसरी सब बातें, और अमृत का अर्थ है वे सभी वस्तुएँ जो अच्छी हैं । भक्त इच्छित वस्तुओं की इच्छा से और बुरी बातों से बचने के लिए प्रार्थना करता है तो कहता है—"मृत्यु न दे, अमृत दे ।" इसी प्रकार अन्धकार के बदले वह ज्योति माँगता है । अभी हम यहाँ आये तो अँधेरा था । पता लगा कि बिजली का तार जल गया है । सब लोग चिन्ता में थे । तार लग गया, रोशनी आ गई तो सबके हृदयों में प्रसन्नता आ गई । झूठ अन्धकार भी है, मृत्यु भी । सत्य रोशनी भी है, अमृत भी । इसी की हम इच्छा करते हैं । इस इच्छा के पूरे होने का एक ही रास्ता है । इस रास्ते को मुझे आपके सामने रखना है । आनेवाले सात दिनों में आप बार-बार इस 'एक ही रास्ता' का वर्णन सुनोगे ।

संसार आज विनाश की ओर जा रहा है । एक से एक बढ़कर ऐसे हथियार बनते हैं जो अधिक-से-अधिक विनाश कर दें । चिल्लाते हुए लोग दौड़े जाते हैं—'बचाओ-बचाओ !' दुनिया का प्रत्येक दार्शनिक, विचारक, राजनीतिज्ञ, विद्वान् और नेता इस चिन्ता में है कि संसार को विनाश से कैसे

बचाया जाये ? प्रत्येक शासन, प्रत्येक शक्ति कहती है—शान्ति चाहिए ।

मन-ही-मन में चाहे वह ग्रौर योजनाएँ बनाता हो, बाहर से प्रत्येक व्यक्ति शान्ति की बात करता है, विनाश से बचने की चिन्ता व्यक्त करता है । इनके बाहर कुछ ग्रौर है, ग्रन्दर कुछ ग्रौर । इसलिए विनाश से बचने की जितनी बात ये करते हैं, विनाश का ग्रन्धकार उतना ही समीप ग्राता जाता है । इनके ग्रन्दर स्पष्ट नहीं है, इसलिए ग्रमृत नहीं है, ज्योति नहीं है । वेद भगवान् सत्य कहते हैं—

य ग्रात्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

'जो ग्रात्मा को देनेवाला, बल को देनेवाला परम सत्य है, जिसकी छाया ग्रमृत है, जिसकी उपासना करना ही सबसे बड़ा काम है' उसीसे दुनिया परे हट गई है । ग्रविश्वास की ग्रग्नि जल उठी है, ज्वालाएँ धधक रही हैं । कुछ पता नहीं कि इस धधकते हुए, उबलते हुए, उछलते हुए ग्रग्नि-सागर में सारा संसार कब कूद पड़े । मानवता जल जाये, महानाश जाग उठे । इस दशा को देखकर लोग चिल्ला उठते हैं । जिन्हें ज्योति ग्रौर ग्रमृत प्रिय है वे चिल्लाकर पूछते हैं—"क्या मानवता को बचाने का कोई उपाय नहीं ? क्या संसार के कल्याण का दिवाला निकल गया ? समाप्त हो गया सब-कुछ ? क्या ग्रब कोई ग्राशा नहीं ?"

इस दशा को देखकर मुझे एक पुरानी कथा याद ग्राती है । ग्रायुर्वेद शास्त्र के महान् ग्रन्थ 'चरक' को लिखनेवाले महर्षि पुनर्वसु ग्रपने ग्रद्वितीय ग्रन्थ को लिखने के पश्चात् एक जंगल में जा रहे थे । घने जंगल की पगडण्डी पर वे थे, पीछे उनका शिष्य ग्रग्निवेश ।

एकदम महर्षि पुनर्वसु खड़े हो गए । ग्राकाश की ग्रोर

देखा उन्होंने, चारों ओर देखा। एक लम्बी साँस लेकर बोले—"महानाश आनेवाला है।"

अग्निवेश ने पूछा—"कैसा महानाश, गुरुदेव ?"

पुनर्वसु बोले—"मैं देखता हूँ कि जल बिगड़ रहा है, पृथिवी बिगड़ रही है, वायु, तारे, आकाश, सूर्य और चन्द्र बिगड़ रहे हैं। अरे, अनाज अपनी शक्ति छोड़ देगा ! ओषधियाँ अपना प्रभाव छोड़ देंगी ! पृथिवी पर टूटते हुए तारे गिरेंगे ! विनाश करनेवाली आँधियाँ चलेंगी ! विनाशकारी भूकम्प उठेंगे ! बड़े-बड़े बम गिरेंगे ! महानाश का महाताण्डव जाग उठेगा ! मनुष्य बचेगा नहीं, बचेगा नहीं !"

यह कथा 'चरक' के विमान स्थान के तीसरे अध्याय में आती है। इसमें लिखा है कि अग्निवेश ने जब यह भयानक भविष्यवाणी सुनी तो हाथ जोड़कर कहा—"गुरुदेव ! आप यह भयभीत करनेवाली भविष्यवाणी क्यों कर रहे हैं ? सब रोग का सामना कर सकें, ऐसा ग्रन्थ आपने लिख दिया। दुनिया के प्रत्येक रोग का इलाज लिख दिया। फिर भी यह विनाश आएगा तो क्यों ?"

महर्षि पुनर्वसु ने कहा—"इसलिए आएगा कि लोग धर्म को छोड़कर अधर्म की ओर चल पड़ेंगे—सत्य को छोड़कर असत्य की ओर। सत्य और धर्म में उनकी रुचि न रहेगी।"

अग्निवेश ने पूछा—"धर्म और सत्य की ओर मनुष्य की रुचि न रहने का क्या कारण होगा, गुरुदेव ?"

गुरुदेव बोले—"बुद्धि का बिगड़ जाना ही इस महानाश का कारण होगा। जब बुद्धि बिगड़ जाती है, जब वह सत्य का मार्ग छोड़कर असत्य की ओर बढ़ती है, तब धर्म में रुचि नहीं रहती।"

यह है इस आनेवाले महानाश का कारण। 'चरक' में केवल रोग ही नहीं बताये गये हैं, इनकी चिकित्सा भी बताई

गई है। अग्निवेश ने जब यह पूछा कि महानाश के रोग का कारण क्या होगा तो महर्षि पुनर्वसु ने स्पष्ट और सीधे शब्दों में कारण भी बता दिया। रोग को कोई नहीं चाहता, परन्तु कारण उत्पन्न हो जाये तो रोग अवश्य पैदा होता है। क्यों जी करौलबाग में रहनेवालो! क्या आपमें से कोई चाहता था कि आपको पीलिया की बीमारी हो जाये? कोई नहीं चाहता था। फिर भी जब कारण पैदा हुआ तो पीलिया जाग उठा। कितने ही घरों में हाहाकार जाग उठा। बुद्धि के बिगड़ जाने से सर्व प्रकार के विनाश उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए चरक ने कहा—

प्रज्ञापराधो मूलं सर्वरोगाणाम्।

'बुद्धि का बिगड़ जाना ही सब रोगों का कारण है।' परन्तु बुद्धि के बिगड़ जाने से केवल शारीरिक रोग पैदा नहीं होते; सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, आत्मिक सभी रोग पैदा होते हैं। इसलिए कहते हैं कि जब नाश का समय निकट आता है, तब बुद्धि उलटे मार्ग पर चलने लगती है। भगवान् कृष्ण ने भी कहा—

बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।। गीता २। ६३ ।।

'बुद्धि का नाश होने से महानाश जाग उठता है।'

महाभारत के उद्योगपर्व में आता है कि जब देवता किसी की रक्षा करना चाहते हैं या किसी का नाश करना चाहते हैं तो क्या करते हैं? स्पष्ट वर्णन है कि जब वे नष्ट करना चाहते हैं तो उसके लिए विष नहीं भेजते, तलवारें नहीं बनाते, किसी को यह नहीं कहते कि जाकर अमुक व्यक्ति को नष्ट कर आओ। केवल एक बात करते हैं और वह यह कि उसकी बुद्धि बिगाड़ देते हैं। तब वह स्वयं ही ऐसे रास्ते पर चल पड़ता है, जो विनाश का रास्ता है; और जब वे किसी की रक्षा करना चाहते हैं, तब उसके लिए अंग-रक्षक नहीं भेजते।

किसी को यह नहीं कहते कि जाओ, इसकी रक्षा करो, अपितु उसकी बुद्धि को ऐसी प्रेरणा करते हैं कि वह स्वयं ही रक्षा के मार्ग पर चल पड़ता है। स्वयं ही उसकी रक्षा होती है।

चाणक्य ने भी कहा है—"ऐ भगवान्! यदि मेरे बुरे कर्मों के कारण मेरा सब-कुछ छिन जाये—धन, दौलत, ज़मीन, परिवार, सुख और सौभाग्य; सबका अन्त हो जाए, मेरे शरीर का एक-एक अङ्ग छीन ले, एक-एक अङ्ग ले ले, केवल एक वस्तु रहने दे मेरे पास, मेरी बुद्धि।"

और वेद भगवान् भी यही कहता है। सामवेद के १०१वें मन्त्र में भक्ति का वर्णन किया, फिर कहा है कि भक्ति करते-करते इसके सफल होने पर त्याग-अभ्यास के बाद जब भगवान् सामने आ जायें तो उससे क्या माँगें?

करौलबाग के किसी सज्जन के सामने भगवान् आ जाएँ और कहें—माँग, क्या माँगता है? तो वह कदाचित् कहे कि मकानों के किराये कम हो जायें, गलियाँ चौड़ी हो जायें। माताएँ शायद कहें कि दुपट्टे सस्ते हो जायें, कॉलिजों और स्कूलों में बच्चों की फ़ीस कम हो जाये। परन्तु सामवेद का यह मन्त्र कहता है—बेकार हैं ये वस्तुएँ। इन्हें माँगने का कोई लाभ नहीं। धन, दौलत, परिवार माँगने का लाभ नहीं। तब क्या माँगो? मन्त्र पुकारकर कहते हैं—

जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा॥

सा० १०१॥

'जब ज्योति जाग उठे; अष्टांग योग की सात सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद, सात यात्राओं को पूरा करने के पश्चात्—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान के बाद जब समाधि अवस्था में पहुँच जाओ, तब एक महान् ज्योति प्रकट होती है।' सात सीढ़ियों के बाद वह मनमोहन प्रियतम

सामने आकर कहता है—अरे, मैं तो प्रकट हो गया, तेरे समक्ष आ गया, माँग क्या माँगता है ? क्या चाहता है तू ? उस समय अपने जीवन को सुधारने के लिए, लोक और परलोक को सुधारने के लिए, उस महाज्योति और महाशक्ति से 'मेधा' को माँगो। मेधा उस बुद्धि को कहते हैं जो भूलती नहीं, जिसमें आई बात फिर कहीं जाती नहीं।

कई लोग इस भूलने के रोग से छुटकारा पाने के लिए ब्राह्मी बूटी का प्रयोग करते हैं। कई लोग मकरध्वज खाते हैं। कई लोग दूसरी ओषधियाँ प्रयोग करते हैं। एक माँ की बात मुझे याद आती है। मैं उसके घर गया था। बहुत दुःखी थी वह। पूछा—"क्यों दुःखी है ?" बोली—"मुझे कुछ भी याद नहीं रहता। बाहर से अन्दर आती हूँ वस्तु लेने के लिए, अन्दर आते-आते यही भूल जाती हूँ कि क्या लेने आई थी।" इस मन्त्र में उसी बुद्धि को माँगने की बात कही गई है जो भूलती नहीं।

दुनिया में माँगने की वस्तुएँ तो बहुत हैं—धन, दौलत, जायदाद, बीवी, बच्चे···मैं इनका विरोधी नहीं। वेद भी इनका विरोधी नहीं। परन्तु याद रक्खो, यदि बुद्धि न हो तो ये सब वस्तुएँ गड्ढे में गिरा देनेवाली हैं। धन माँग लिया आपने। आपने माँगा तो ईश्वर देगा अवश्य। वह तो दयालु है। माँगनेवाला चाहिए, वह अवश्य देता है। यदि इस धन को प्राप्त करके आप शराब पीने लग जाओ, दुराचार और व्यभिचार में फँस जाओ तो फिर यह धन तुम्हारे लिए कल्याण का कारण होगा या प्रलय का ? ऊपर ले जायेगा या नीचे गिरा देगा ? धन न सही; भक्ति माँग ली आपने। मिल गई भक्ति और आप बैठ गए किसी मन्दिर में; घर की सुध न बाहर की। शरीर का होश न संसार का। ऐसी भक्ति ऊपर उठायेगी या नीचे गिरायेगी ? धन अच्छा है, भक्ति अच्छी है, स्वास्थ्य

अच्छा है, सब-कुछ अच्छा है ; परन्तु तब तक जब तक वे मर्यादा में रहें और मर्यादा में रखने का काम बुद्धि करती है। न इधर न उधर, बीच से होकर ले चलती है वह।

नदियाँ जब तक किनारों की मर्यादा के अन्दर बहती हैं तब तक इनसे खेतियाँ हरी-भरी होती हैं। ग्राम और नगर बसते हैं। समृद्धि जाग उठती है। परन्तु यही नदियाँ किनारों को छोड़कर, मर्यादा को तोड़कर, बाढ़ का रूप धारण कर जब गर्ज उठती हैं, तब बाढ़ आने लगती है ; तबाही जाग उठती है। इसलिए हमारे शास्त्रों ने कहा है—

अति सर्वत्र वर्जयेत् !

'यह अति न करो। मर्यादा के अन्दर रहो। सीमा के अन्दर रहो।' संसार में जहाँ-जहाँ मर्यादा टूटती है, वहाँ-वहाँ तबाही और विनाश जागते हैं। जिस देश में मर्यादा न रहे, वह देश नष्ट हो जाता है। जिस समाज में मर्यादा न रहे वह समाज समाप्त हो जाता है। और यह मर्यादा क्या है ?

एक नौजवान लड़का है, एक नौजवान लड़की। दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं। लड़के के माता-पिता लड़की के माता-पिता से मिलते हैं, लड़की के माता-पिता लड़के के माता-पिता से। सब-कुछ देखकर दोनों की सगाई कर देते हैं। विवाह का दिन निश्चित होता है। बैण्ड और बाजे बजते हैं। सजे हुए बाराती आते हैं। फूलों की मालाएँ पहने हुए दूल्हा आता है। लड़की के पिता के घर में पहुँचते हैं सब लोग। लड़की पुष्पमाला से लड़के का स्वागत करती है। सुन्दर वेदी सजाई जाती है। पवित्र मन्त्रों से विवाह-संस्कार कराया जाता है। दूसरे दिन मोटर या डोली में बैठकर लड़का और लड़की दोनों घर चले जाते हैं। सब ओर से बधाइयाँ मिलती हैं। सब ओर से आशीर्वाद मिलते हैं। सुख का संसार बस जाता है। यह है मर्यादा।

परन्तु यही लड़का और लड़की यदि मर्यादा को भूलकर घर से भाग निकलें, दिल्ली के रेलवे-स्टेशन से गाड़ी में बैठकर मेरठ की ओर चल दें, तो शोर-गुल मच जाता है। पुलिस दौड़ती है। उन्हें पकड़ लेती है। हवालात में बन्द कर देती है। मुकद्दमा चलता है। मान मिट्टी में मिल जाता है। सुख नष्ट हो जाता है। दुःख जाग उठता है। अब बातें तो दोनों एक ही हैं। एक लड़का लड़की को ले गया या लड़की लड़के को ले गई। परन्तु पहली दशा में मर्यादा के अनुसार कार्य हुआ इसलिए सुख होता है, दूसरी दशा में मर्यादा तोड़ी गई इसलिए दुःख होता है।

इस मर्यादा को बतानेवाली, स्थिर रखनेवाली मेधा बुद्धि है; मर्यादा न रहे तो देश देश नहीं रहता, समाज समाज नहीं रहता, मानव मानव नहीं रहता। सब नष्ट हो जाते हैं। विनाश की ओर भागते हैं। इसलिए इस मन्त्र में मेधा को माँगने के लिए कहा गया है, जिससे माँगनेवाले का जीवन कल्याण से पूर्ण हो। अपना कल्याण करनेवाला हो, दूसरों का कल्याण करनेवाला हो। प्रतिदिन तो हम माँगते हैं—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु॥

य० ३२। १४॥

'जिस मेधा के लिए देवता लोग तरसते हैं, रक्षा करनेवाले और विद्वान् लोग जिसकी कामना करते हैं, उस मेधा से ही अग्निदेव! हमें मेधावाला करो। आज करो।'

ऐसे कितने ही मन्त्र वेद भगवान् में आते हैं। बार-बार वे कहते हैं, प्रातः की किरणों से मेधा माँग। दोपहर के तपते सूर्य से मेधा माँग। सायंकाल के ढलते सूर्य से मेधा माँग। ऋग्वेद में यह बात आती है। अथर्ववेद के पाँचवें काण्ड का एक सारा सूक्त ही मेधा के लिए है। यदि मेधा न हो तो

अमृत भी विष हो जाता है। सगे भाई आपस में लड़ पड़ते हैं। धन कष्टदायक बन जाता है। बुद्धि के बिना दुनिया में कुछ भी नहीं होता। यह बुद्धि भी तीन प्रकार की है—बुद्धि, सुबुद्धि, कुबुद्धि। परन्तु जिस बुद्धि की बात मैं करता हूँ, वह साधारण बुद्धि नहीं। बुद्धि से आगे चलकर मेधा आती है। मेधा से आगे प्रज्ञा जिसे प्रतिभा भी कहते हैं। सृष्टि के आरम्भ में ऋषियों के अन्दर यह प्रतिभा नाम की बुद्धि ही थी जिसने लोक और परलोक-ज्ञान उनके सामने रक्खा। इस तीन प्रकार की बुद्धि के अतिरिक्त एक चौथी प्रकार की बुद्धि भी है जिसे ऋतम्भरा कहते हैं। यह बुद्धि उस समय प्रकट होती है जब मनुष्य समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है; तब केवल अटल सत्य दिखाई देता है—ऐसा सत्य जो कभी बदलता नहीं, जिसे ऋत कहते हैं। सत्य और ऋत में बहुत अन्तर है।

आप पूछते हैं—"घड़ी में क्या बजा है?" मैं उसे देखकर कहता हूँ, "६ बजकर ३ मिनट हुए हैं।" आधा घण्टे के बाद आप फिर पूछते हैं—"क्या बजा है?" मैं कहता हूँ—"६ बजकर ३३ मिनट।" दोनों बार जो कुछ मैंने कहा वह सत्य अवश्य है परन्तु ऋत नहीं।

ऋत उस सत्य को कहते हैं जो सर्वदा एक-सा रहता है; प्रकृति के नियम की तरह अटल है। सूर्य रोशनी देता है, यह बात उस समय भी सत्य थी जब सूर्य पहले-पहल बना, आज भी सत्य है, करोड़ों वर्षों के बाद भी सत्य होगी। अग्नि जलाती है, यह बात सदा सत्य रही है, सदा सत्य रहेगी। इस अटल और न बदलनेवाली सचाई का नाम ऋत है। बुद्धि जब जाग उठती है, तब ऐसा ज्ञान हमारे सामने आता है जो कभी बदलता नहीं, जो महान् है, जिससे बड़ा और कोई ज्ञान नहीं।

परन्तु यह चारों प्रकार की बुद्धि प्राप्त कैसे होती है ? यह बात है जो मैं आपको बताना चाहता हूँ, जिसका आनेवाले सात दिनों में वर्णन करूँगा और उस मन्त्र का वर्णन करूँगा जिसे हम प्रतिदिन पढ़ते हैं, जिसे कुछ लोग गुरुमन्त्र कहते हैं, कुछ सावित्री मन्त्र, कुछ गायत्री और जिसे मैं महामन्त्र कहता हूँ। आइये ! सब मिलकर इस मन्त्र का उच्चारण कीजिए। बोलिए मेरे साथ—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु० ३६। ३॥

देखो ! इस महामन्त्र में माँगनेवाला धन और दौलत को नहीं माँगता, ज़मीन और मकान को नहीं माँगता, बीवी और बच्चों को नहीं माँगता, शक्ति और साम्राज्य नहीं माँगता। केवल एक बात कहता है वह—"मालिक ! मेरी बुद्धि को प्रेरणा कर। उसे अपने मार्ग पर ले चल !" इस मन्त्र का पूरा वर्णन आगे चलकर करूँगा। आज केवल यही कहना चाहता हूँ कि ठीक मार्ग पर चलती हुई बुद्धि बहुत बड़ी चीज़ है। इससे सब-कुछ मिलता है। बिगड़ जाए तो बहुत तबाही करती है, सब-कुछ नष्ट कर देती है—

जहाँ सुमति वहाँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति वहाँ विपति निदाना॥

सो ऐ दुनियावालो ! बुद्धि बिगड़ जाए तो सब-कुछ बिगड़ जाता है। इसलिए २४ अक्षर के छोटे-से मन्त्र में, जिसे महर्षि दयानन्द ने महामन्त्र कहा, केवल बुद्धि के लिए याचना की गई है। २४ अक्षर का यह मन्त्र वैसे बहुत बड़ा नहीं। सामवेद में ऐसे-ऐसे मन्त्र हैं जो दस-दस लाइन के हैं। तब इस मन्त्र को महर्षि ने महामन्त्र कहा तो क्यों ? इसको इतनी उच्च पदवी मिली तो किसलिए ? इसके एक-एक शब्द में महानता है। एक-एक शब्द का रहस्य है, आपको बताऊंगा। सबसे

पूर्व इसके शब्द ओ३म् की बात सुनिये।

यह ओ३म् तो गायत्री मन्त्र से भी छोटा है, परन्तु वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् कहते हैं, यह सबसे बड़ा है। क्यों है? कौन-सी बात है इसमें? केवल तीन अक्षर का मन्त्र है—

अ, उ, म

तीनों से मिलकर बना ओ३म्। जितनी महिमा इस छोटे-से मन्त्र की है, उतनी मैंने और किसी की नहीं देखी। वेद भी कहता है, इसका जाप करो—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तँ शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतँ स्मर॥

यजु० ४०। १५॥

'जाप करो। न केवल जीवन में, अपितु उस समय भी जब हवा, अग्नि और न मरनेवाले आत्मा से बना यह शरीर भस्म होनेवाला हो। जब कमज़ोरी आ जाये, जब जीवनभर के लिए काम सामने आके खड़े हो जायें, उस समय भी जाप करो। उस ओ३म् का जाप करो, जो संसार को बनानेवाला है।'

परन्तु आज किसी से कहिए कि ओ३म् का जाप करो, तो वह कहता है "अवकाश नहीं मिलता।" उसके पास गप्पें मारने के लिए समय है, सिनेमा देखने को समय है, बेकार बातें करने को समय है, ओ३म् का जाप करने के लिए समय नहीं।

कुछ और लोग कहते हैं, "हमें तो ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास ही नहीं।" वास्तव में उन्हें विश्वास होता है परन्तु जाप करने में थोड़ा-सा परिश्रम करना पड़ता है, उससे छुट्टी पाने के लिए वे 'विश्वास नहीं' का बहाना कर देते हैं। कुछ और लोग कहते हैं, "जाप करने को जी तो चाहता है, ईश्वर में विश्वास भी है, परन्तु क्या करें मन नहीं लगता, भाग

जाता है बार-बार।" कुछ और लोग कहते हैं—"मन भी लगता तो है कभी-कभी, परन्तु फिर तरह-तरह के विचार मन में आने लगते हैं, मन उचट जाता है।"

परन्तु देखो, घबराओ नहीं। कभी किसी हलवाई के पास उस समय जाओ जब वह खांड की चाशनी तैयार करता है। वह बड़े-से कड़ाहे में खांड और पानी आग पर चढ़ा देता है। थोड़ी देर में खांड ढलती है।

कड़ाहे में उफ़ान आने लगता है, तो हलवाई दूध का एक या आधा गिलास उसमें डाल देता है। खाण्ड के ऊपर मैल आ जाती है, उसे हटाता है, फिर उबालता है, फिर उफ़ान आता है, फिर दूध डालता है, फिर मैल आती है, फिर हटाता है, ऐसा बार-बार करता है। दूध तो शुद्ध और साफ़ है, फिर ये मैल कहाँ से आती है?

हलवाई से पूछो। वह बतायेगा—यह मैल खाण्ड के अन्दर थी। बार-बार दूध डालने से वह कटती है। जब तक सारी मैल कट न जाये, खाण्ड भी दूध की भाँति शुद्ध और पवित्र न बन जाये, तब तक दूध डालना पड़ता है।

यही दशा तो हमारे मन की भी है। मन नहीं लगता, उचटता है, भागता है, तो घबराओ नहीं। उफ़ान उठेगा अवश्य। जब-जब उफ़ान उठे, तब-तब ओ३म् के जाप का दूध डालते जाओ। मैल को काटते जाओ। धीरे-धीरे वह समय आयेगा जब मैल नहीं रहेगी, जब यह मन शुद्ध और निर्मल हो जायेगा। मैल से घबराओ नहीं। जन्म-जन्म की मैल है यह। इसे बाहर निकालना है। एक दिन में यह निकलती नहीं, परन्तु अन्ततः निकलती अवश्य है और अन्त में शुद्ध और पवित्र चाशनी तैयार हो जाती है; और जो लोग कहते हैं कि हमें ईश्वर पर विश्वास है नहीं, उन्हें कैसे समझाऊँ?

बादशाह अकबर की बात सुनाता हूँ। बीरबल का नाम तो आप जानते हैं। बहुत विद्वान् ब्राह्मण थे वे। अकबर के साथ रहते थे। स्वयं ईश्वर को याद करते थे, कई बार बादशाह को भी कहते थे—"ईश्वर को याद करो।" एक दिन बादशाह ने कहा—"अच्छा बीरबल, तुम जो कहते हो ईश्वर को याद करूँ तो बताओ कि ईश्वर कहाँ रहता है? कैसे उसके दर्शन हो सकते हैं और वह क्या करता है?" एक साथ तीन प्रश्न पूछ लिए उसने। तीनों बहुत कठिन। बीरबल चिन्ता में डूब गया; बोला, "सात दिन का अवकाश दो, आपके सवालों का उत्तर सातवें दिन दूँगा।" परन्तु उत्तर देना कहाँ सरल है! छः दिन बीत गए। बीरबल को उत्तर नहीं सूझा। सातवें दिन चिन्ता में डूबा बैठा था वह, तभी उसके नन्हे बेटे ने आकर कहा, "पिताजी, आप चिन्ता में क्यों हैं?" बीरबल ने कहा, "बादशाह ने तीन प्रश्न पूछे हैं, उनका उत्तर नहीं मिलता।" प्रश्न भी बता दिये उसको। नन्हा-सा बालक बोला, "वाह! इतनी-सी बात की चिन्ता है आपको? इनके उत्तर तो मैं बता सकता हूँ।" बीरबल ने कहा, "बताओ।" बेटे ने कहा, "आपको नहीं, बादशाह को बताऊँगा, मुझे उसके पास ले चलो।" बीरबल बेटे को लेकर बादशाह के पास पहुँचा; बोला—"श्रीमन्, आपके सवालों का उत्तर यह नन्हा बालक देगा।" बादशाह ने आश्चर्य से बालक की ओर देखा; बोले, "इतने कठिन प्रश्न, उत्तर देगा यह बालक!" फिर बोले, "अच्छा बच्चे, बताओ हमारे प्रश्नों का क्या उत्तर है?" बच्चे ने कहा, "बादशाह! तुम भारत में नये-नये आए हो, भारत की संस्कृति को जानते नहीं। भारत की संस्कृति यह है कि कोई आदमी मिलने के लिए आए तो पहले उसे खिला-पिलाकर उसका सत्कार करो, बाद में उससे बातें करो। यह एकदम-से उत्तर पूछने का रिवाज भारत का रिवाज नहीं है।"

बादशाह ने झेंपकर कहा, "अच्छा बोलो तुम क्या खाओगे ?" बच्चे ने कहा, "मैं तो छोटा-सा बालक हूँ, मुझे दूध ही अच्छा लगता है।" बादशाह ने कटोरे में दूध मँगवाया। आ गया दूध; बच्चे को देकर कहा, "पियो बच्चे !" बालक ने कटोरे को लेकर उसके अन्दर झाँका, इधर-उधर उसको देखा, फिर अँगुली डालकर उसमें से कोई वस्तु ढूँढने लगा। बादशाह ने कहा, "यह क्या करते हो बालक ? दूध को पीते क्यों नहीं ?" बच्चे ने कहा, "बादशाह, मैंने सुना है कि दूध में मक्खन होता है, परन्तु इस दूध में मक्खन तो दिखाई नहीं देता ?" बादशाह ने हँसकर कहा, "तुम अभी बच्चे हो। अरे, मक्खन इसके अन्दर अवश्य है, उसे देखना हो तो दूध को दही में डालकर जमाना पड़ता है, दही बन जाये तो उसमें मथनी डालकर मथना पड़ता है, बिलोना पड़ता है। जब बहुत ज़ोर से बिलोया जाता है, तब मक्खन ऊपर आता है।"

बच्चे ने कहा, "सुनो बादशाह ! तुम्हारे पहले दो सवालों का जवाब यही है। ईश्वर है सब जगह। इस संसार के कण-कण में रहता है वह, परन्तु दर्शन तब होते हैं जब मन को ओ३म् के जाप का दही डालकर जमाया जाता है। फिर धारणा, ध्यान और समाधि की मथनी से बिलोया जाता है। तब भक्त अपने हृदय में भगवान् को अपने समक्ष देखता है, स्पष्ट रूप में देखता है। तब भगवान् के दर्शन होते हैं, निश्चित रूप में होते हैं।"

बादशाह ने कहा, "वाह रे बालक ! मेरे दो प्रश्नों का उत्तर दे दिया तुमने। मेरा सन्देह दूर हो गया। अब बताओ, यह ईश्वर क्या करता है ?"

बच्चे ने कहा, "यह बात गुरु बनकर पूछते हो या शिष्य बनकर ?"

बादशाह ने कहा, "गुरु बनकर कोई नहीं पूछता, मैं शिष्य

बनकर पूछता हूँ।"

बच्चे ने कहा, "अद्भुत शिष्य हो तुम! गुरु नीचे पृथिवी पर खड़ा है और तुम ऊपर तख़्त पर विराजमान हो!"

बादशाह लज्जित होकर जल्दी से नीचे उतर आया। बच्चे को तख़्त पर बैठा दिया। हाथ जोड़कर बोला, "अब बताओ, ईश्वर क्या करता है?"

बच्चे ने हँसकर कहा, "यही करता है, ऊपरवाले को नीचे और नीचेवाले को ऊपर।"

और यह खेल क्या हमने अपनी आँखों से नहीं देखा? मैंने बड़े-बड़े राजा और महाराजाओं को बम्बई की गलियों में ख़ाक छानते हुए देखा है। उन लोगों को जो कुछ वर्ष पूर्व जेलों के बन्दी थे, ताज और तख़्त सँभालते, शासन करते देखा है। उस भगवान् की महिमा महान् है। कौन उसका वर्णन कर सकता है! जब सब लोग छोड़ जाते हैं, जब सभी आशाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब भी वह मनुष्य के साथ रहता है, तब भी इसकी रक्षा करता है।

पिछले वर्ष अलमोड़ा के रास्ते से मैं कैलास गया। अलमोड़ा से २५० मील के अन्तर पर है कैलास। पाँच सौ मील पैदल चला मैं। तब देखा कि सब जगह भगवान् सहायता करते हैं। दस साथी थे मेरी यात्रा में—६ बंगाली साधु, एक मद्रासी। भारत की सीमा पर अन्तिम पड़ाव है गरबियांग। वहाँ से हमने गाइड लिया, रोटी पकाने के बर्तन लिये, खाने का सामान लिया, तम्बू लिये और अब चली यह पार्टी। तिब्बत की सीमा को पार करके पिस्सुलेक घाटी में पहुँच गई जो १६,५०० फ़ीट ऊँची है—बर्फ़ से लदी हुई। हर तरफ़ बर्फ़ ही बर्फ़ दिखाई देती है वहाँ। उस घाटी को लाँघकर हम आगे बढ़े। मानसरोवर पहुँच गये। मैं हूँ 'ख़ुशहाल'। हर समय हँसता रहता हूँ। लोगों को हँसाता रहता हूँ। सबकी

सेवा भी करता हूँ। मेरे इस स्वभाव और सेवाभाव को देखकर दस के दस साथी बोले, "आनन्द स्वामी, हम तो सर्वदा तेरे ही साथ रहेंगे।"

पन्द्रह हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर है मानसरोवर। ५४ मील इसका घेरा है। प्रकृति का सौन्दर्य वहाँ खेलता है, नाचता है। शीतल नीला जल वहाँ जैसे निमन्त्रण देता है—"आओ, मेरी गोद में आओ!"

मैंने अपने बंगाली साथियों से कहा, "आओ इसमें स्नान करें।"

वे बोले, "नहीं आनन्द स्वामी, पहले तू नहा।"

मैंने उन्हें अपने गाँव की एक बात सुनाई। बताया कि पंजाब के देहात में हर ग्राम के निकट छोटा या बड़ा एक जोहड़ होता है जिसमें लोग नहाते हैं। एक दिन प्रातःकाल के समय सर्दी बहुत थी। तेज़ बरसाती हवा चल रही थी। एक पण्डित जी अपने घर से स्नान करने को चले। रास्ते में हवा से ठिठुर गए। जोहड़ पर पहुँचे यह देखने के लिए कि पानी कितना ठण्डा है, पाँव के अगले हिस्से को जिसे पंजाबी भाषा में 'पब' कहते हैं, पानी में डाला। पानी था ठण्डा, बर्फ़ के समान। जल्दी से पाँव को बाहर निकालकर बोले, "पब स्नान सब स्नान" अर्थात् पाँव ने नहा लिया तो सारे शरीर ने नहा लिया। जूता पहनकर वापस आ गए। आ रहे थे तो आगे एक और पण्डित जी मिले। वे भी नहाने जा रहे थे। उन्होंने कहा, "क्यों भाई, नहा आये?" पहले पण्डित ने कहा, "पब स्नान सब स्नान।" दूसरे पण्डित ने कहा, "तुझ स्नान तो मुझ स्नान।" अर्थात् तूने नहा लिया तो मैंने नहा लिया और यह कहकर वापस चल पड़ा। मैंने हँसते हुए कहा, "तुम भी क्या ऐसा ही स्नान करोगे?"

और गौरीकुण्ड पहुँचे तो वहाँ और भी अधिक सर्दी थी।

मैं हूँ सहनशील। १८,००० फ़ीट ऊँचा गौरीकुण्ड। मैंने बर्फ़ के तोदों को इधर-उधर हटाया। एक कमण्डल भरकर शरीर पर डाला, सुन्न हो गया शरीर। दूसरा कमण्डल डालने का साहस नहीं हुआ। मेरे साथियों ने कहा—"तू दूसरा कमण्डल नहीं डालता, हम पहला भी नहीं डालेंगे।"

इस प्रकार हँस-हँसकर यात्रा करते रहे—ग्यारह साथी जो बिछड़ने का नाम नहीं लेते थे। परन्तु वापस आती बार, पिस्सुलेक घाटी में बर्फ़ से जो मैं फिसला तो दूर तक फिसलता चला गया। बर्फ़ के एक तोदे ने रोक लिया मुझे, नहीं तो आज करौलबाग न आना पड़ता, अफ्रीका के नगरों और जंगलों में भी न जाना पड़ता, वहीं शान्ति हो जाती सदा के लिए। बर्फ़ ने गिराया मुझे, बर्फ़ ने ही बचाया। परन्तु उठने का प्रयत्न किया तो देखा एक पाँव टूट गया है। उठ भी नहीं सकता।

यत्न करके उठा। दिल ने कहा, 'चल आनन्द स्वामी, एक पाँव टूट गया तो क्या हुआ, दूसरा तो है। चल नहीं सकता तो बैठ जा।' गाइड को बुलाया; उससे कहा, "मुझसे चला नहीं जाता।" गाइड ने कहा, "आप यहीं बैठिये, मैं गरबियांग से झब्बू लेकर आता हूँ।" झब्बू बैल-जैसे उस जानवर को कहते हैं जिसपर बैठकर तिब्बत में यात्रा की जाती है।

घण्टों व्यतीत हो गये बर्फ़ में बैठे। तब झब्बू आया। उसपर बैठकर मैं गरबियांग पहुँचा। वहाँ पहुँचकर देखा—मेरे दस साथियों में से छः छोड़कर आगे चले गये हैं। आनन्द-स्वामी मर गया है या जीवित है, यह देखने का भी यत्न नहीं किया उन्होंने। दूसरे दिन शेष चार साथी भी चले गए। एक घायल फ़कीर के लिए वे रुक नहीं सकते थे। कहते थे, सदा तेरे साथ रहेंगे। एक दिन भी साथ नहीं रह सके।

गरबियांग में पड़े-पड़े तीन दिन बीत गये। मेरे गाइड

कीचखम्बा ने कहा, "स्वामी, कब तक यहाँ पड़े रहोगे? रास्ते बन्द हुए जाते हैं। थोड़े दिनों में बर्फ़ पड़ने लगेगी, फिर वापस जाने का कोई रास्ता नहीं रहेगा। एक डाण्डी कर लो। उसमें सवार होकर चले जाओ।"

उसके कहने पर डेढ़ सौ रुपये में एक डाण्डी की। उस-पर बैठा। आठ मज़दूरों ने डाण्डी को उठाया। जंगल में पहुँचे हम लोग। शाम हो गई थी। आगे काली नदी थी। जंगल में शेर बार-बार गर्ज उठते थे। मज़दूरों ने कहा, "इस समय हम आगे नहीं जायेंगे।" मैंने कहा, "मत जाओ।"

उन्होंने लकड़ियाँ इकट्ठी करके मेरे पास आग जला दी जिससे जंगली जानवर निकट न आयें। वे भी सो गये, मैं भी सो गया। प्रात:काल उठकर देखा कि आठ-के-आठ मज़दूर पता नहीं कहाँ चले गये। अपनी डाण्डी भी छोड़ गये थे। मैंने समझा—कहीं इधर-उधर गये होंगे, अभी आ जायेंगे; परन्तु देर हो गई, वे नहीं आए। तब मैंने समझा कि वे डरकर भाग गये हैं और इस सुनसान जंगल में मैं अकेला रह गया हूँ—अकेला और इस दशा में कि एक पग भी चल नहीं सकता। कमण्डल को देखा—वह आधा पानी से भरा था, और नदी थी वहाँ से आधा मील दूर नीचे। बैग मैं देखा—उसमें केवल छः बिस्कुट थे। थोड़ा-सा पानी पिया और दो बिस्कुट खाके मैं पड़ा रहा। एक दिन गया, दूसरा दिन भी, तीसरा दिन भी। जंगली पशु निकट आकर चले जाते थे। बिस्कुट समाप्त हो गये, पानी भी। अब केवल जीवन समाप्त होना बाकी था कि तीसरे दिन की शाम को छः कुली काली नदी को पार करने वहाँ आ गये। मुझे देखकर आश्चर्य से बोले, "तुम कौन हो? कैसे यहाँ पड़े हो?" उन्हें अपनी सारी कहानी सुनाई। वे बोले—"अभी तो हम गरबियांग जा रहे हैं, तीन दिन बाद आयेंगे। तुम्हें काली नदी के पार अल्मोड़ा

ले चलेंगे।"

तीन दिन की रोटियाँ बनाकर वे मुझे दे गये। तीन दिन के लिए पानी भरकर भी दे गये। "उस सुनसान उजाड़ जंगल में किसने भेज दिया उनको?" मैंने उनसे पूछा। वह उनका आम रास्ता नहीं था। काली नदी के जिस घाट से वे प्रायः आते थे, वह वर्षा के कारण टूट गया था। विवश होकर उन्हें इस रास्ते पर आना पड़ा। किसने तोड़ दिया वह घाट? किसने पहुँचा दिया उनको मेरे पास? प्रभु के अतिरिक्त कौन उस समय मेरे साथ था? साथी चले गये थे। डेढ़ सौ रुपया लेने-वाले मज़दूर भाग गये थे। परन्तु आनन्द स्वामी का वह महान् प्रभु, जो कभी कहीं जाता नहीं, उसने छः व्यक्तियों को ठीक उस दिन मेरे पास भेज दिया जब सब-कुछ समाप्त हो गया था।

छः दिन उस जंगल में बैठा रहा मैं। पाँव हिलता नहीं था। वे कुली आये, सहारा देकर मुझे अपने साथ ले चले। इनकी सूचना ठीक थी। काली नदी के उस पार पहाड़ टूट गया था। रास्ता टूट गया था। ऊपर जाने का कोई मार्ग न था। तभी एक कुली ने कहा, "एक रास्ता है। हम लोग दूसरे रास्ते से ऊपर जायेंगे। ऊपर से रस्सा नीचे लटका देंगे। तुम अपने को रस्से के साथ बाँध लेना, हम तुम्हें ऊपर खेंच लेंगे।" ऐसा ही किया उन्होंने; जैसे कुएँ से बाल्टी खेंचते हैं, इस प्रकार खेंचा उन्होंने मुझे। परन्तु कुएँ की दीवार तो होती है सीधी, वह था पहाड़। कभी कोई चट्टान इधर आकर लगती, कभी उधर। बचता-बचाता मैं पहुँच गया ऊपर। परन्तु थोड़ी ही दूर जाने पर पता लगा कि आगे एक और पहाड़ टूटा पड़ा है; सड़क बहकर खाई में चली गई है। केवल आधा फ़ीट चौड़ा एक मार्ग है, इसपर से होकर दो फ़र्लांग जाना पड़ेगा। पहले कुली मुझे सहारा देकर चलते

थे, एक इधर एक उधर। इस जगह मुझे सहारा कौन देता ? वहाँ तो एक आदमी के पाँव रखने की जगह भी न थी। मैंने सोचा—'अब बचूँगा नहीं।' बैग से एक काग़ज़ निकाला, उस-पर लिखा—"मेरी सारी सम्पत्ति वही है जो इस बैग और बिस्तर में है। यदि मैं मर जाऊँ तो मेरा यह स्वीकार-पत्र है कि बैग और बिस्तरे का सामान कुली लोग आपस में बाँट लें और दिल्ली में श्री धुरेन्द्र शास्त्री को और 'मिलाप' वालों को सूचना दे दें कि आनन्द स्वामी मर गया है।"

यह स्वीकार-पत्र लिखकर मैं प्रार्थना करने के लिए बैठा और अकेला चल पड़ा, बिना सहारे के। देखनेवाले चकित हुए, मैं भी चकित हुआ। दो फ़र्लांग का वह रास्ता बिना सहारे के मैंने इस प्रकार पार कर लिया जैसे वह एक पग रास्ता हो। कौन उस समय मेरे साथ था ? साथी चले गये। रुपया लेने-वाले मज़दूर चले गये। तरस खानेवाले कुली भी साथ नहीं दे सकते थे। पाँव चलता नहीं था। फिर किसने उस लम्बे और तंग रास्ते पर मेरी रक्षा की, जिसके दोनों ओर गहरी खाइयाँ थीं ?

सुनो ! सुनो ! ऐ दुनियावालो ! ऐ भगवान् को न माननेवालो ! उसके अतिरिक्त और कोई सहायता नहीं करता। वह प्रत्येक स्थान पर सहायता करता है। जब सब लोग छोड़ जाते हैं, तब वही आकर सहायता देता है। जो उसपर विश्वास करता है उसका बेड़ा पार अवश्य होता है।

परन्तु मैं तो ओ३म् की बात कहना चाहता था आपसे। अब समय हो गया है, इसलिए बात फिर कहूँगा।

ओ३म् तत् सत् !

दूसरा दिन

प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

ओ३म् की बात कह रहा था मैं आपसे। यह भी कह रहा था कि बुद्धि के ठीक होने से सब-कुछ ठीक हो जाता है। बुद्धि के बिगड़ने से सब-कुछ बिगड़ जाता है। तीन प्रकार की बुद्धि बताई थी मैंने—बुद्धि, सुबुद्धि और कुबुद्धि। फिर यह भी कहा कि बुद्धि के ऊपर मेधा है; ऐसी बुद्धि है जो धारणा करती है, मर्यादा बतलाती है, मर्यादा में रखती है, पुकारकर कहती है—धन अवश्य कमाओ परन्तु इसपर साँप बनकर नहीं बैठ जाओ। स्वयं खर्च करो ; उसे दूसरों को दान दो। देखो कि तुम्हारे निकट कोई भूखा तो नहीं मर रहा है। यदि ऐसी बात है तो तुम्हारा धन कमाना बेकार; अर्थहीन है। दान कर दो। उसे दे दो उनको, जो उसके बिना जीवन से हताश हुए जाते हैं। हाँ, दान दे दो परन्तु वह भी मर्यादा से। इस प्रकार नहीं कि तुम स्वयं भी भूखे मर जाओ। किसी भी ओर अति न करो।

अति का भला न बोलना, अति की भली न चुप्प।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धुप्प।।

हर वस्तु मर्यादा में अच्छी लगती है। मर्यादा में रहे तो सुख देती है। मर्यादा को सिखानेवाली बुद्धि का नाम मेधा है। इसके पश्चात् एक और बुद्धि है जिसे प्रज्ञा कहते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान से ऊपर जाकर यह प्रज्ञा नाम की बुद्धि प्रकट होती है। इससे

ऊपर है प्रतिभा, जिसके प्राप्त होते ही अन्तरात्मा में ज्योति जाग उठती है। आत्मा की आँख खुल जाती है। आत्मा की आवाज़ सुनाई देने लगती है। इससे भी ऊपर है वह बुद्धि जिसे ऋतम्भरा कहते हैं, जो केवल सत्य को देखती है; जो सदा रही है, सदा रहती है, सदा रहेगी। रजस् और तमस् दोनों गुण जब परे हट जाते हैं, केवल सत्त्व गुण शेष रह जाता है, तब यह ऋतम्भरा बुद्धि जाग उठती है।

और मेधा से ऋतम्भरा तक ले-जानेवाली शक्ति कहाँ से मिलती है, यह भी सुनिये! ध्रुव की कथा तो आप जानते हैं। छोटा-सा वह बालक एक आसन में बैठकर घोर तप कर रहा था। हर प्रकार के मोह को त्यागकर, भक्ति में मग्न होकर, दुनिया को भूलकर, भगवान् को याद कर रहा था। तभी भगवान् जागती ज्योति बनकर उसके सामने आ खड़े हुए; बोले—"अरे ओ नन्हे भक्त! बोल, क्या चाहता है तू? माँग, क्या माँगता है? मैं आ गया हूँ।"

ध्रुव ने कहा—"मैं व्यापारी नहीं, सब-कुछ देकर कुछ लेने को नहीं आया। मैं केवल भक्ति के लिए भक्ति करता हूँ। मैं तुमसे तुमको माँगता हूँ।"

यह है मेधा से ऋतम्भरा तक पहुँचने का ढंग। पूर्ण श्रद्धा, अटल विश्वास और सच्चे ज्ञान के साथ ईश्वर-भक्ति और उस ईश्वर-भक्ति का सबसे सीधा, सबसे सरल और सबसे महान् मार्ग है ओ३म्।

इस मन्त्र को हमारे ऋषियों ने आर्य-जीवन में ओतप्रोत कर दिया है। बच्चे का जन्म हो तो आज्ञा है कि सोने की सलाई पर शहद लगाकर उसकी जिह्वा पर ओ३म् लिखो। उसके कान में ओ३म् कहो जिससे उसे ज्ञात हो कि वह ओ३म् ही उसका रक्षक है। उसपर उसे जीवन-भर विश्वास करना है। मृत्यु के समय के लिए उन्होंने कहा—"ओ३म् का

उच्चारण करो। ओ३म् का उच्चारण करता हुआ जो व्यक्ति मरता है वह सीधा सूर्यलोक में जाता है ; जो नहीं करता वह नीचे के लोकों की ओर गिरने लगता है।" छान्दोग्य-उपनिषद् के पहले प्रपाठक में यह बात आती है और बात शत-प्रतिशत सत्य है। आत्मा का निवास सूक्ष्म शरीर में है, जो दोनों छातियों के बीच में हृदय के निकट रहता है। मनुष्य के अन्दर हृदय जैसे सारे जीवन का केन्द्र है, उसी प्रकार इस दुनिया में यह सूर्य है। सूर्य से नीली, पीली, हरी, लाल आदि रंगों की किरणें निकलकर इस संसार को जीवन देती हैं। हृदय से नीली, पीली, लाल और हरी नाड़ियाँ निकलकर सारे शरीर में पहुँचती हैं ; सारे शरीर को जीवन देती हैं। मनुष्य के अन्दर हृदय समाप्त हो जाए या उसे हानि पहुँचे तो सारा शरीर समाप्त हो जाता है, मृत्यु आ जाती है; दुनिया में यदि सूर्य न रहे तो दुनिया मर जाती है। सूर्य और हृदय दोनों में गहरा सम्बन्ध है। अपने-अपने स्थान पर दोनों केन्द्र हैं ; दोनों से किरणें निकलती हैं। इन किरणों के कारण दोनों के मध्य में एक सीधी पक्की सड़क बन गई है। जिन लोगों के हृदय की गति उस समय बन्द होती है, जब वे ओ३म् का जाप कर रहे हैं, उसका ध्यान कर रहे हैं और उसका उच्चारण कर रहे हैं, उनका सूक्ष्म शरीर बिना किसी कष्ट के उस साफ़, सीधी और पक्की सड़क पर आगे बढ़ता है। परन्तु अन्त समय में ओ३म् का जाप प्रत्येक व्यक्ति तो नहीं कर सकता। केवल वे लोग कर सकते हैं जिन्होंने जीवन-भर उसका जाप किया हो, जीवन-भर उसकी साधना की हो। ऐसे लोगों के लिए यह 'ग्राण्ड ट्रंक रोड' अन्त में अपने दरवाज़े खोल देती है ; भुजा पसारकर कहती है, "आओ, मैं तुम्हें वहाँ ले चलूँ जहाँ परम ज्योति है।"

छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि ने यह भी बतलाया कि

ओ३म् की उपासना करनेवाले मनुष्य की शक्ति किस प्रकार बढ़ती है, कहाँ तक बढ़ती है और किस प्रकार प्रभाव करती है। ऋषि ने कहा, "जैसे कठोर पत्थर के साथ, लोहे-जैसी चट्टान के साथ टकराकर मिट्टी का ढेला चकनाचूर हो जाता है, वैसे ही वह आदमी नष्ट हो जाता है जो ओ३म् की उपासना करनेवाले को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करता है।"

उपासना करनेवाले के लिए कितनी बड़ी बात है यह ! वह स्वयं किसी को हानि नहीं पहुँचाता, स्वयं किसी के लिए बुरा नहीं सोचता, परन्तु इस महामन्त्र की अनन्त शक्ति उस पापी को समाप्त करके रख देती है जो ओ३म् के भक्त को हानि पहुँचाना चाहता है। इससे पूर्व कि वह रक्षा करने-वाली परम शक्ति के प्रेम को हानि पहुँचा सके, यह महान् शक्ति उसको चकनाचूर करके रख देती है।

'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के उपासना काण्ड में महर्षि दयानन्द ने भी बताया कि ईश्वर की भक्ति, ईश्वर की उपासना कैसे करें। क्या किसी घने भयानक जंगल में चले जाएँ ? घर-बार छोड़ दें ? किसी वृक्ष-विशेष या नदी-विशेष की शरण लें ? क्या ऐसा किये बिना भक्ति नहीं हो सकती ? महर्षि कहते हैं, "अरे भोले मनुष्य, हो सकती है।" उनके शब्द हैं—

"जो ईश्वर का ओ३म् नाम है, वह पिता-पुत्र के सम्बन्ध की तरह है और यह नाम ईश्वर को छोड़कर और किसी अर्थ के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं, उन सबमें से ओंकार सबसे उत्तम नाम है।"

कितनी महिमा है ओ३म् नाम की ! जब ब्राह्मण ग्रन्थों को देखें, गोपथ ब्राह्मण को, शतपथ ब्राह्मण को और दूसरे ब्राह्मण ग्रन्थों को, तो ज्ञात होता है कि ओ३म् का नाम ही आत्मा की सबसे बड़ी दवा, सबसे बड़ी चिकित्सा है। रोगी

है न आत्मा ! जन्म-जन्म की मैल जम गई है इसके ऊपर, जन्म-जन्म के पाप-ताप और कष्ट देनेवाले संस्कार जमा हो गये हैं इसके ऊपर। उस मैल को, उन बीमारियों को दूर करने का उपाय क्या है ? शतपथ ब्राह्मण कहता है—"आत्मा की चिकित्सा और आत्मा का मोक्ष भी ओ३म् ही है।" यह अद्भुत-सी बात लगती है, परन्तु विचार से देखिये यह कितनी सत्य है। बन्धनों में फँस गया है आत्मा। इनसे छूटना चाहता है। यह कैसे छूटेगा ? बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी हो गई हैं इसके आसपास। उनके अन्दर इसका दम घुटा जाता है। बाहर आने की इच्छा है। वह बाहर कैसे आयेगा ? पहले दीवार टूटनी चाहिए; बन्धनों का अन्त होना चाहिए। इसलिए ऋषि ने कहा—"ओ३म् ही आत्मा की चिकित्सा है।" परन्तु बन्धन से मुक्ति पाकर होता क्या है ? क्या नये बन्धनों की ओर बढ़ना चाहिए ? क्या आत्मा को नई दीवारें खड़ी करनी चाहिएँ अपने चारों ओर ? नहीं मेरी माँ ! नहीं मेरी बच्ची ! यह तो आत्मा का लक्ष्य नहीं। आत्मा का लक्ष्य है ओ३म्। इसीलिए ऋषि ने कहा, "आत्मा का मोक्ष भी ओ३म् है।" ओ३म् रास्ता है, लक्ष्य भी है (इस ग्रन्थ में आगे चलकर यह भी कहा कि ओ३म् ही आत्मा है)।

और माण्डूक्य उपनिषद् सारे-का-सारा ओ३म् की व्याख्या और महिमा से भरा है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य जी कहते हैं, "ओ३म् के जाप से पाप नष्ट होते हैं, जल जाते हैं, भस्म हो जाते हैं। प्राणायाम के द्वारा प्राणों को वश में करके धारणा और ध्यान की अवस्था से ऊपर उठकर जब भक्त ओ३म् का अजपा जाप करता है और उस जाप में और सबको, अपने-आपको भी भूल जाता है तो इसके सभी पाप, सभी बुरे कर्म, इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे प्रचण्ड भास्कर के निकलने पर अन्धकार

समाप्त हो जाते हैं।" यह सब-कुछ ओ३म् के जाप से होता है।

पुराणों के अन्दर भी ओ३म् की महिमा बार-बार वर्णन की गई है। अग्निपुराण के २१५वें अध्याय के ये शब्द सुनिये, "जो ओंकार को जानता है वही योगी है, वही रुकावटों का नाश करनेवाला है। सारे मन्त्रों का सार यह ओ३म् है। इसकी सहायता से पापी भी इस अथाह भव-सागर से पार उतर जाते हैं।" कैसे उतर जाते हैं? क्यों उतर जाते हैं? इसका उत्तर प्रश्नोपनिषद् देता है। इस उपनिषद् का पाँचवाँ प्रश्न सब-का-सब ओ३म् के सम्बन्ध में है। सत्यकाम महर्षि पिप्पलाद से पूछता है, "गुरुदेव, सारी आयु ओ३म् के जाप करने का फल क्या है?" पिप्पलाद कहते हैं, "इस ओ३म् से आत्मा वहाँ पहुँचता है, जहाँ ऊपर ब्रह्म और परब्रह्म का साक्षात् हो जाता है।" अपर ब्रह्म भगवान् का विश्वभर में फैला हुआ विराट् रूप है। इसी को देखकर वेद "नमः विश्वरूपाय" कहता है। हम यहाँ बैठे हैं, इससे परे दीवारें हैं। दीवारों से परे मकान या सड़क, उनसे परे और मकान और सड़कें—सारा नगर। इस नगर से आगे कुछ खाली जगहें हैं, खेत हैं, जंगल हैं, उनसे परे और नगर हैं, और गाँव हैं। उनके परे फिर खाली ज़मीन, फिर नगर, फिर ज़मीन, फिर नगर, पहाड़, नदियाँ, नाले, झीलें, मरुस्थल, इन सबको हम एक देश कहते हैं। इस देश के तीन ओर एक सागर लहराता है। एक ओर हिमालय खड़ा है। इनसे परे और देश हैं, और सागर, और पहाड़, और मरुस्थल हैं। इस प्रकार यह पृथिवी है, सूर्य की रोशनी में चमकती हुई, उसकी रोशनी के बिना अँधेरी। पृथिवी और सूर्य के बीच में बुध और शुक्र हैं। पृथिवी से परे मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण और ब्रह्म नाम के तारे हैं। यह हमारा सौर-मण्डल है। ऐसे अरबों सौर-मण्डल हैं इस विश्व

में, खरबों मीलों में फैले हुए। रात के समय हम जो तारे देखते हैं, उनमें से प्रत्येक तारा एक सूर्य है, हर सूर्य के साथ कितने ही ग्रह हैं। मानवी विज्ञान, मानवी ज्ञान और मानवी कल्पना के अनुसार अनन्त विश्व हैं। इसका अन्त दिखाई नहीं देता, और इस विश्व के एक-एक कण में, सामने जलती हुई इस छोटी-सी बत्ती में, और लाखों मील ज्वालाएँ फेंकते हुए सूर्य में, इस पृथिवी पर, पृथिवी से परे सौर-मण्डल के दूसरे ग्रहों पर, उनसे परे दूसरे सौर-मण्डलों में, अरबों-खरबों सूर्यों में ईश्वर की शक्ति कार्य करती है। ईश्वर की ज्योति चमकती है। पृथिवी की नीची-से-नीची गहराई में, आकाश की ऊँची-से-ऊँची चोटियों पर, हर ओर, हर स्थान पर, हर समय वह ही वह है। यह उसका अपर ब्रह्म रूप है, जिसे ओ३म् का जाप करने-वाला हाथ पर रखे खिलौने की भाँति देखता है। परन्तु उससे ऊपर, उससे परे भी तो ब्रह्म है—विश्व से परे, प्रकृति से परे, परम कल्याण रूप, परम शान्त, परमानन्द, परमेश्वर, परब्रह्म।

ओ३म् का जाप करनेवाला ईश्वर के दोनों रूप देखता है। अपर ब्रह्म का रूप इससे आकर कहता है—

रोशन हैं मेरे जलवे हर शै में हाय! लेकिन
है चश्म कोर तेरी, क्या है क़ुसूर मेरा?

और ओ३म् का जाप करते-करते जब भक्त अपने-आपको भूलकर, प्रकृति को भूलकर, अन्तर्धान होकर देखता है, जब बाहर के पट बन्द हो जाते हैं और अन्दर के पट खुल जाते हैं, तब उस परब्रह्म का दर्शन होता है। यह है ओ३म् के जाप की महिमा। परन्तु यह जाप होता कैसे है? वह भी सुनिये! ओ३म् का जाप तीन प्रकार से होता है—पहला जाप एक मात्रा का, दूसरा दो मात्रा का, तीसरा तीन मात्रा का। एक चार मात्रा का जाप भी होता है परन्तु इसका वर्णन नहीं करूँगा। आप नहीं समझ सकेंगे।

एक मात्रा से जाप करने की विधि यह है कि जैसे मन्दिर का घण्टा लगातार ऊँचे स्वर में गूँजता है, इसी प्रकार ऊँचे स्वर से ओ३म् का उच्चारण कीजिए। बार-बार कीजिये। इस प्रकार कीजिये कि इसके अतिरिक्त और कोई ध्वनि आपको सुनाई न दे। लगातार गूँजती हुई, झंकारती हुई ध्वनि। ऐसा करने से दुनिया में जितना भी धन है, जितनी भी शक्ति है, जितनी भी प्रसिद्धि है, जितनी आप चाहते हैं, उतनी आपको मिल जायेगी, वह आपकी हो जायेगी।

अब कई लोग कहेंगे कि "बस, आनन्द स्वामी ! हमें तो यह एक मात्रावाला जाप ही करने दो।" करो। परन्तु याद रखो, एक मात्रा के इस जाप से संसार की दौलत मिल जायेगी, शक्ति मिल जायेगी, शान्ति नहीं मिलेगी। जो लोग शान्ति चाहते हैं, उन्हें एक मात्रा से नहीं, दो मात्रा से ओ३म् का जाप करना चाहिए। केवल धन और दौलत से किसी को शान्ति नहीं होती। अरे, यह धन तो बैचैनी का कारण भी बन सकता है, पाप और अत्याचार का साधन भी और फिर रोने और चिल्लाने का कारण भी। कई लोग मुझसे कहते हैं, "आनन्द स्वामी ! घर-बार छोड़कर, धन-दौलत, मोटरों और परिवारों को छोड़कर तू संन्यासी बन गया। तुझे क्या मिलता है ?" मैं कहता हूँ शान्ति मिलती है। चाहो तो मेरे साथ आओ, गंगोत्री की गुफाओं में, तुम्हें शान्ति का दर्शन कराऊँ। बहुत-से लोग कहते हैं, "चलेंगे।" परन्तु जाता कौन है ? अपने चारों ओर अशान्ति के साधन उत्पन्न कर रखे हैं उन्होंने, चाहते हैं शान्ति। मिलेगी कैसे ? शान्ति तो दो मात्रा का जाप करने से मिलती है।

एक मात्रा का जाप करनेवाला मनुष्य पृथिवी लोक को प्राप्त करता है, दो मात्रा से जाप करनेवाला सोम लोक को, तीन मात्रा से जाप करनेवाला सूर्य लोक को। यह पृथिवी-लोक या मनुष्य लोक, सोम लोक या चन्द्र लोक, सूर्य लोक

या प्रकाश लोक सब हमारे अन्दर हैं। इनकी बात फिर कभी बताऊँगा, आज तो जाप की बात बतानी है। एक मात्रा के जाप की बात मैं कह रहा था। इससे धन और दौलतें मिलती हैं। मैं धन और दौलत का विरोधी नहीं हूँ। यह शरीर है न हमारा, इसके लिए भोजन और वस्त्र तो चाहिए। रोटी के बिना शरीर रह नहीं सकता—

पेट न पइयाँ रोटियाँ, सब्बे गल्लाँ खोटियाँ।

इसके लिए वस्त्र की भी आवश्यकता है। अफ्रीका प्रदेश की बात सुनाता हूँ आपको। पिछले दिनों मैं वहाँ गया, अफ्रीका के जंगली लोगों को देखा। हे प्रभु! किस प्रकार रहते हैं वे लोग! नंग-धड़ंग! स्त्रियाँ भी, पुरुष भी, बच्चे भी, बूढ़े भी। कुछ लोगों ने कपड़े पहनने आरम्भ कर दिये हैं, कुछ लोग खेती-बाड़ी भी करते हैं, परन्तु कई ऐसे लोग भी हैं, जो न कपड़े पहनते हैं, न खेती-बाड़ी करते हैं। उनमें से एक प्रकार के लोग मसाई हैं। इस जाति के लोग शहर में आते समय बैल का चमड़ा अपने ऊपर ओढ़ लेते हैं। शहरों से परे, अपने देहात में बैलों के चमड़े को भी तिलाञ्जलि दे देते हैं। अन्न, सब्ज़ी, दाल, ऐसी कोई वस्तु वे नहीं खाते, नमक भी नहीं खाते, केवल गाय का दूध पीते हैं या केवल बैल का रक्त। और भी कुछ खाने की वस्तु है, यह उन्हें पता नहीं। साधारण लोगों को इनकी बस्ती में जाने की आज्ञा नहीं, परन्तु मैं तो गया। श्री दर्शनलाल कोहली जंगल के ठेकेदार हैं, वे मुझे ले गये इन 'मसाइयों' के जंगल में। मैंने उनसे कहा, "भाई, तुम लोग दूध पीते हो तो अच्छी बात है, परन्तु यह रक्त क्यों पीते हो? अन्न खाया करो।" उनके सरदार ने मुझे बताया कि "अन्न तो निर्धन लोग खाते हैं, हम निर्धन नहीं हैं।" इन्हीं में ऐसे लोग भी मैंने देखे जो फल-फूल कुछ नहीं खाते केवल बर्फ़ से निकला हुआ कमल-फूल खाकर जीवन-

निर्वाह करते हैं। परन्तु एक वस्तु खायें या दूसरी, खाये बिना तो किसी का जीवन-निर्वाह है नहीं। खाने के लिए, शरीर के लिए, सांसारिक दौलत के लिए, एक मात्रा से ओ३म् का जाप करना चाहिए। आइये मेरे साथ, उच्चारण कीजिये पवित्र नाम—

ओ······३······म्।

इस प्रकार उच्चारण करने के पश्चात् ज़बान बन्द कर लो, होंठों को बन्द कर लो, ऊँची आवाज़ से ओ३म् कहते रहो। अब यह आवाज़ नाक से निकलेगी। एक गूँज-सी उत्पन्न होगी, झंकार-सी, इसको एक मात्रा का जाप कहते हैं।

अब दो मात्रा के ओ३म् की बात सुनो। एक मात्रा का जाप स्थूल शरीर का जाप है। स्थूल शरीर के अन्दर है सूक्ष्म शरीर। इसमें प्रविष्ट होकर जो जाप किया जाये, उसे दो मात्रा का जाप कहते हैं। यह सूक्ष्म शरीर मनुष्य के हृदय के पास दोनों छातियों के मध्य में जो गढ़ा-जैसा है, वहाँ रहता है। अँगूठे के बराबर है वह। ज्ञान की आँखों के बिना दिखाई नहीं देता। इसमें ध्यान करके होंठों से, नाक से, गले से निकाले बिना जो शांत जाप होता है, उसे दो मात्रा का जाप कहते हैं। इस जाप को करनेवाला सोम लोक या चन्द्र लोक में प्रवेश करता है, उस शान्ति को पाता है जो संसार में और किसी भी जगह नहीं। चन्द्रमा की किरणें जैसे शीतल कर देती हैं, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के अन्दर किया हुआ जाप मनुष्य की घबराहट, दुःख, दर्द, कष्ट और क्लेश को दूर कर देता है।

परन्तु स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर से भी आगे है कारण-शरीर। प्रकृति ही इस संसार का कारण है। जिस रूप में हम इसे देखते हैं, यह प्रकृति की वास्तविक दशा नहीं। वास्तविक प्रकृति में न रूप है, न रस, न गन्ध है, न शब्द। रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण से परे वह शान्त और निश्चल अवस्था

में रहती है। उस दशा में जो प्रकृति है, उसे कारण कहते हैं।

यह कारण-शरीर सूक्ष्म शरीर के अन्दर है। सूक्ष्म शरीर से आगे बढ़कर भक्त का ध्यान जब इस शरीर में पहुँचता है तब यह भी पता नहीं होता कि मैं जाप कर रहा हूँ या नहीं। तब ऐसा जाप होता है जिसे अजपा जाप कहते हैं। इस समय मनुष्य सूर्य लोक में प्रवेश करता है। जाप करनेवाला उस दशा में पहुँचता है जहाँ शक्तियाँ इसके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती हैं। खड़ी हो जाती हैं वे, लेकिन भक्त यह भी नहीं देखता कि यह कौन खड़ा है। यह है तीन प्रकार से जाप की विधि।

परन्तु केवल मुख को हिलाने या शब्द निकालने से तो यह जाप नहीं होता। जाप के लिए तीन वस्तुओं की आवश्यकता है। ये तीन वस्तुएँ जब तक न हों, तब तक जाप सफल नहीं होता। इनमें से पहली वस्तु है तप, दूसरी वस्तु है ब्रह्मचर्य और तीसरी वस्तु है श्रद्धा।

इन तीनों वस्तुओं की बात सुनिये! तप का अर्थ है शारीरिक साधना, ब्रह्मचर्य का अर्थ है मानसिक साधना, श्रद्धा का अर्थ है आत्मिक साधना।

शरीर ठीक न हो तो कोई भी कार्य नहीं हो सकता। यदि यह गर्मी, सर्दी, धूप और वर्षा को सहन नहीं कर सकता तो फिर न एक मात्रा के जाप का प्रश्न पैदा होता है, न दो या तीन मात्रा के जाप का। शारीरिक साधना का अर्थ यह है कि शरीर में हर प्रकार की दशा को सहन करने की शक्ति हो और इस शक्ति को उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि शरीर को ठीक रखने की विधि का ज्ञान हो। शरीर को ठीक रखने की विधि क्या है, इसके लिए आपको एक कहानी सुनाता हूँ। समझाने के लिए शायद एक कहानी बनाई गई है। कहानी यह है कि महर्षि चरक जब आयुर्वेद के सारे ग्रन्थ

लिख चुके, सर्व प्रकार की विधियों का, सर्व प्रकार की ओषधियों का, चिकित्साओं का वर्णन कर चुके और उनका प्रचार कर चुके तो उनके मन में विचार आया कि चलूँ देखूँ, लोग मेरे बताए हुए मार्ग पर चलते भी हैं या नहीं ? मेरा परिश्रम सफल हुआ या नहीं ? एकपक्षी का रूप धारण करके वे उड़े और वहाँ गये जहाँ वैद्यों का बाज़ार था। एक वृक्ष पर बैठकर पक्षी ने ऊँची आवाज़ में कहा, "कोऽरुक् ?" अर्थात् 'रोगी कौन नहीं ?' एक वैद्य ने पक्षी को देखा, इसकी बात को समझा, बोला, "जो च्यवनप्राश खाता है।" एक और वैद्य बोला, "नहीं, जो चन्द्रप्रभा वटी खाता है।" तीसरा वैद्य बोला, "जो बंग भस्म खाये, वह अरोगी है, वही अधिक स्वस्थ है।" चौथे वैद्य साहब बोले, "ये सब बातें ग़लत हैं। जब तक लवण-भास्कर चूर्ण नहीं खाओगे तब तक पेट ठीक नहीं होगा।" चरक ने यह सब-कुछ सुना तो उन्हें दुःख हुआ। आश्चर्य के साथ उन्होंने सोचा, "मैंने इतना बड़ा शास्त्र रचा तो क्या मनुष्य के पेट को दवाइयों का गोदाम बना दिया जाये ? मेरा परिश्रम निष्फल हो गया। कोई भी कुछ भी सीखा नहीं।' इससे दुःखी होकर वे उड़े। कई स्थानों पर गए। हर स्थान पर उन्होंने कहा, "कोऽरुक् ?" कहीं भी ठीक उत्तर न मिला। अन्त में दुःखी होकर एक उड़ान भरकर सुनसान स्थान पर जा बैठे, एक सूखे वृक्ष की शाखा पर। उसके पास ही एक नदी बहती थी। नदी में नहाकर प्रसिद्ध वैद्य श्री वाग्भट्ट महाराज बाहर आ रहे थे कि चरक ने उन्हें पहचाना; पुकारकर कहा, "कोऽरुक् ?" वाग्भट्ट चलते-चलते रुक गये। आँख उठाकर पक्षी की ओर देखा; बोले, "हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्।" चरक इन शब्दों को सुनते ही वृक्ष से नीचे आ गये और पक्षी-रूप छोड़कर वाग्भट्ट के समक्ष खड़े हो गये—"तुम ठीक समझते हो वैद्यराज !"

परन्तु इस 'हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्' का अर्थ क्या है ? अर्थ मैं समझाता हूँ और कहना चाहता हूँ कि जो व्यक्ति स्वास्थ्य के इच्छुक हैं वे इन शब्दों को अपने घर की दीवारों पर लिखवा लें। हर समय इनका ध्यान रक्खें, हर समय इनपर विचार करें। हर समय उस उपदेश का पालन करें जो इन 'हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्' शब्दों में दिया गया है।

हितभुक् का अर्थ है ऐसी वस्तुएँ खाओ जो आपके शरीर के लिए अच्छी हैं। केवल खाने के लिए मत जीओ, जीने के लिए खाओ। जिह्वा के स्वाद में फँसकर पेट में कूड़ा-करकट न भरते जाओ। यह सोचकर खाओ कि जो खाते हो उससे लाभ क्या होगा।

यह जिह्वा रानी है न ? यह बहुत नटखट है। नाना प्रकार के स्वाद ढूँढती है। नाना प्रकार की वस्तुएँ माँगती है। कभी कहती है गोलगप्पे खाऊँ, कभी कहती है जलजीरा पीऊँ, कभी कहती है लाल मिर्चों का अचार खाऊँ, कभी कहती है कि इमली की चटनी चाटूँ। मैं स्वादवाली वस्तुएँ खाने का विरोधी नहीं। नमक एक बार मैंने ढाई वर्ष तक नहीं खाया। आरम्भ में ऐसा अनुभव हुआ कि जो कुछ खाता हूँ वह सब गोबर है, परन्तु क्या करता ! जिन योगिराज से मैंने हठयोग सीखा, उन्होंने आज्ञा दी, "मत खाओ नमक, गोबर लगे या कुछ और, नमक के बिना ही सब-कुछ खाना होगा।" कोई एक वर्ष के पश्चात् वस्तुओं का स्वाभाविक स्वाद आने लगा। मैंने योगिराज को बताया, "अब तो नमक के बिना वस्तुएँ खाता हूँ तो वे गोबर प्रतीत नहीं होतीं, उनमें स्वाद प्रतीत होता है।" वे बोले, "अब स्वाद आने लगा तो अब नमक आरम्भ करो।" मैंने रणवीर की माता को कहा, "सब्ज़ी में नमक डाल दो।" नमकवाली सब्ज़ी खाई तो ऐसा लगा जैसे उसमें किसी ने कुनीन डाल दी हो, इतनी कड़वी थी वह।

परन्तु क्या करता ! खाया उसे । कुछ मास में फिर नमक में स्वाद आने लगा, कुनीनवाली बात नहीं रही । मैंने योगिराज को बताया कि अब मैं नमक खा सकता हूँ, अब वह अच्छा लगता है, उसमें स्वाद आता है । योगिराज बोले, "अच्छा, फिर स्वाद आने लगा ! अब फिर नमक छोड़ दो ।" मैंने नमक छोड़ दिया, फिर हर वस्तु गोबर लगने लगी । इसमें कष्ट अवश्य अनुभव होता है, परन्तु जो व्यक्ति साधना करना चाहते हैं, उनके लिए अपनी इन्द्रियों पर अधिकार करना आवश्यक है । याद रक्खो, जिन व्यक्तियों का अपनी जिह्वा पर संयम नहीं, उनका कभी विश्वास मत करो, वे किसी भी इन्द्रिय पर संयम नहीं कर सकते । इस प्रकार स्वाद क्या है और बेस्वाद क्या है, यह मैं जानता हूँ । यदि आप स्वाद-वाली वस्तुएँ खाना चाहें तो मैं इसका विरोध नहीं करता । मेरी ओर से हर प्रकार की स्वादवाली वस्तुएँ खाइये, परन्तु यह सोचकर खाइये कि क्या वे आपका हित करेंगी ? आपके शरीर के लिए अच्छी होंगी ? एक स्थान पर तले हुए बैंगन पड़े हैं, आलू के गर्म-गर्म पकौड़े रक्खे हैं, लाल-लाल चटनी पड़ी है, कई भाइयों के मुँह में तो चटनी का नाम सुनकर पानी आ गया होगा, और ये मेरी माताएँ···इन्हें तो भगवान् चटनी दे, इमली की चटनी, आम की चटनी, टमाटर की चटनी, पता नहीं कितने प्रकार की चटनी ये बनाती हैं । अच्छा करती हैं । ये बनायें, पकौड़े भी तलें । ये सब वस्तुएँ यदि पड़ी हैं तो खाओ, पर उस समय, जब पता हो जाए कि उनके खाने से लाभ होगा । यदि स्वयं पता नहीं तो किसी वैद्य से पूछ लो । केवल स्वाद के लिए खाना आरम्भ न कर दो । ऐसी वस्तुएँ खाओ जिनसे शरीर को लाभ हो । मलाई खाओ, दूध पियो, दही खाओ, मक्खन खाओ । ये वस्तुएँ प्रयोग करो जिनमें केवल जिह्वा को स्वाद न आये, शरीर को भी स्वाद आये ।

परन्तु क्यों जी ! मलाई खाओ तो कितनी ? यदि आप दो सेर मलाई ही खा जायें, तीन सेर रबड़ी पेट में डाल लें या डेढ़ सेर मक्खन ही चट कर जायें तो इससे शरीर को लाभ के स्थान पर हानि होगी । इसलिए वाग्भट्ट ने दूसरी बात कही मितभुक् । अच्छी वस्तुएँ खाओ, परन्तु थोड़ी खाओ । मर्यादा में रहकर खाओ । मर्यादा से अधिक पिया हुआ अमृत भी विष हो जाता है । भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्म्मसु । गीता ६ । १७ ॥

अच्छी वस्तु खाओ । उचित मात्रा में खाओ । पेट में चार रोटियों की जगह हो, तो दो रोटियाँ खाओ । दो रोटियों की जगह पानी और हवा के लिए रहने दो । इसको कहते हैं उचित खाना ।

परन्तु मेरी इन माताओं से पूछो कि उचित भोजन क्या है, तो ये कहेंगी—चार रोटी की जगह हो तो छः रोटियाँ खाना ही उचित है । यह बात वे अपने लिए नहीं कहतीं, अपने श्रीमानों के लिए कहती हैं । श्रीमान जी दफ़्तर या दुकान से घर आये, श्रीमती जी ने बहुत-सी स्वादवाली वस्तुएँ उनके लिए बना रक्खी हैं । अब वे ज़ोर दे-देकर कहती हैं, एक और खाओ, एक और खाओ । खिलाओ भाई, अवश्य खिलाओ, परन्तु यह भी तो सोचो कि अधिक खाने से शक्कर की बीमारी हो जायेगी । गूट, फूट, मूट, पता नहीं क्या-क्या हो जायेगा । उस समय क्या करोगे ?

हमारे लाहौर में था एक दुर्गा मोटा । एक ताँगे में अकेला बैठता था ; आधा आगे, आधा पीछे । युद्ध के दिनों में राशन आरम्भ हुआ तो उसने प्रार्थना की कि राशन के आटे से जितनी रोटियाँ बनती हैं, मेरा उनसे निर्वाह नहीं होता । सर सिकन्दर हयात ने उसे अपने पास बुलाया । उसने कहा, "आज मैं देखूंगा तू कितना खाता है ।" नौकरों को आज्ञा दी

कि वे सेर-भर आटे की रोटियाँ बनाएं। बनी रोटियाँ। दुर्गा सारी रोटियाँ खा गया; बोला, "अभी तो आधी दूर तक पहुँचा हूँ, इतनी ही रोटियाँ और हों तो भूख मिटेगी!"

सो भाई मेरे! इस प्रकार से खाने का लाभ क्या! उतना खाओ जितना पच जाये; इससे अधिक खाओगे तो हानि होगी। मैं कश्मीर में था तो वहाँ सुना कि किंगकाँग नाम का पहलवान आया है। लोगों ने मुझे बताया कि वह प्रात: नाश्ते में तीन दर्जन अंडे खाता है, दो डबल रोटियाँ खाता है, एक पाव मक्खन और एक बाल्टी चाय, और फिर इसके बाद दोपहर को भी इसी प्रकार खाता है, शाम को भी, रात्रि को भी। मैंने पूछा, "इतना खा के करता क्या है?" पता चला कि कुश्ती में दूसरों को गिरा देता है। मैंने हँसते हुए कहा, "जो इतना खायेगा वह दूसरों को गिरायेगा ही, उन्हें उठाने का कार्य उससे न हो सकेगा।"

अन्तत: इस प्रकार खाने का लाभ क्या है? हर समय खाओ, खाओ, खाओ। क्या इसीलिए बना है मनुष्य? यह प्रात: को चाय, फिर बिस्तरे में चाय, फिर कॉफी, और फिर चाय, और फिर चाय, और फिर चाय पी, चाय पी। इसी के लिए क्या मानव दुनिया में आया था? अरे भाई, पेट की यह देग़ची है, इसमें एक सीमा से अधिक नहीं आता। किस समय क्या डालना चाहिए, यह सोचकर डालो। हर समय डालते न चले जाओ।

एक माँ दाल बना रही थी। चूल्हे पर देग़ची रखकर दो मुट्ठी दाल उसने देग़ची में डाल दी। आग जलने लगी। दाल अभी कुछ ही पकी थी कि दो अतिथि आ गये। उसने दो मुट्ठी दाल और देग़ची में डाल दी। अभी यह दूसरी दाल अधपकी ही थी कि तीन अतिथि और आ गए। उसने तीन मुट्ठी दाल और देग़ची में डाल दी। अब बताओ, इस दाल

का क्या बनेगा ! क्या वह कभी पकेगी ? क्या वह कभी ठीक होगी ? कुछ बहुत अधिक पक जायेगी, कुछ थोड़ी पकेगी, कुछ कच्ची रह जाएगी। यह पेट भी तो देग़ची है। हर समय इसमें डालते जाओगे तो हानि होगी। इसलिए वाग्भट्ट ने कहा—मितभुक्। खाओ अवश्य, थोड़ा खाओ, मर्यादा के अनुसार खाओ।

परन्तु केवल हितभुक् और मितभुक् से कार्य नहीं बनता। मनुष्य यदि ऊपर उठना चाहता है, इस जीवन को उस लक्ष्य की ओर ले-जाना चाहता है, जिसके लिए यह मिला है, तो आवश्यक है कि वह ऋत्भुक् भी बने। अच्छी वस्तुएँ खाए, थोड़ी खाए, परन्तु वे वस्तुएँ खाए जो उत्तम कमाई से पैदा की गई हों। कोई वस्तु ठीक कमाई से मिली या नहीं, इसका बहुत मनुष्यों को पता नहीं लगता। जो लोग सदा पाप का अन्न खाते रहे हों, उन्हें पाप और पुण्य में अन्तर दिखाई नहीं देता। सफेद चादर पर लगा हुआ धब्बा दिखाई देता है। हम कहते हैं धब्बा लग गया है। परन्तु काले कम्बल पर लगा हुआ दाग़ किसे दिखाई देता है ? वह तो साधना से, ज्ञान से, प्रयत्न से ज्ञात होता है। पूज्य महात्मा हंसराज जी एक बार हरिद्वार के मोहन आश्रम में ठहरे हुए थे। एक वानप्रस्थी उनके पास ही एक कमरे में रहता था। एक दिन यह वानप्रस्थी महात्मा जी के पास आया और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। महात्मा जी ने पूछा, "क्या हुआ आपको ?" वह बोला, "मैं लुट गया ! महात्मा जी, मेरी उम्रभर की कमाई नष्ट हो गई !" महात्मा जी बहुत घबराये। पूछने पर पता लगा कि वह वानप्रस्थी पिछले कई वर्षों से ईश्वर-भक्ति के मार्ग पर चलता हुआ ध्यान और उपासना की सीढ़ी तक पहुँच चुका था। रात्रि के समय अपने कमरे में बैठ जाता वह। भगवान् का ध्यान करता, ईश्वर की शीतल ज्योति

उसे दिखाई देती, उसमें ग्रानन्द से मस्त होकर वह घण्टों बैठा रहता । परन्तु कल रात उसके साथ एक ग्रद्भुत घटना घटी । रोते हुए उसने कहा, "मैं ध्यान में बैठा था, महात्मा जी, तो ऐसा प्रतीत हुग्रा कि रोशनी में लाल दुपट्टेवाली एक नौजवान लड़की खड़ी है । मैंने घबराकर ग्राँखें खोल दीं । समझा कुछ भूल हो गई है ; फिर प्राणायाम किया, फिर ध्यान से ज्योति को देखा, परन्तु वह लड़की ग्रब भी वहीं थी । मैं उसे जानता नहीं, परन्तु वह बार-बार मेरे सामने ग्राकर खड़ी हो जाती है । मैंने बार-बार मुंह धोकर प्राणायाम करने का प्रयत्न किया है, बार-बार उसे हटाने का प्रयत्न किया है, परन्तु रोशनी में उसके ग्रतिरिक्त ग्रौर कुछ मुझे दिखाई नहीं देता । मेरी तो उम्र-भर की कमाई लुट गई ! मैं तो कहीं का रहा नहीं ! पता नहीं, मुझे क्या हो गया है ।" यह कहता जाता था ग्रौर रोता जाता था। महात्मा जी ने पूछा, "किसी बुरे व्यक्ति की संगत में तो नहीं बैठे ? कोई बुरी पुस्तक तो नहीं पढ़ी ?" उसने कहा, "ऐसा कुछ नहीं किया मैंने ।" महात्मा जी ने कहा, "कल तुम ग्राश्रम से बाहर गये होगे ?" वह बोला, "गया था, एक भण्डारे में । एक सेठ साहब ग्राये हैं, उन्होंने भण्डारा किया था, वहाँ खाना खाने गया था ।" महात्मा जी ने कहा, "जाकर पता लगाग्रो, वह सेठ कौन है, क्यों उसने भण्डारा किया है ?" वानप्रस्थी गया । पता लगाकर उसने बताया कि सेठ एक शहर का रहनेवाला है । (उसका नाम लेना नहीं चाहता) वहाँ उसने ग्रपनी नौजवान बेटी को एक बूढ़े के पास दस हज़ार रुपये में बेच दिया है । दो हज़ार रुपये लेकर वह हरिद्वार ग्राया है कि पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए भण्डारा कर दे । महात्मा जी ने इस बात को सुनकर कहा, "यही वह नौजवान लड़की है जो तुम्हें दिखाई देती है । तुमने जो कुछ खाया,

वह पुण्य-भाव से दिया हुआ दान नहीं था ; पाप की कमाई का एक भाग है—उस महाभाग्य लड़की का मूल्य। जब तक यह अन्न तुम्हारे शरीर से नहीं निकलेगा, तब तक उस लड़की का दिखाई देना बन्द न होगा।"

यह है पाप का अन्न खाने का परिणाम ! आत्मा इससे गिरती है। आगे बढ़ता हुआ मनुष्य इससे पीछे हटता है। इसलिए वाग्भट्ट ने कहा, केवल हितभुक् और मित्भुक् होना ही पर्याप्त नहीं। मानव यदि हर प्रकार के रोगों से बचना चाहता है तो उसे ऋतुभुक् भी होना चाहिए।

हितभुक्, मितभुक् और ऋतभुक् बनकर ही मनुष्य तप के इस मार्ग को पार करता है, जो ओ३म् का जाप करते समय शारीरिक साधना के लिए आवश्यक है।

परन्तु जैसा मैंने पहले कहा, शारीरिक साधना या तप तो पहली सीढ़ी है। इसके बाद दूसरी सीढ़ी है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य या मानसिक साधना के लिए भी तीन बातें आवश्यक हैं—स्वाध्याय, सत्संग और सेवा।

स्वाध्याय क्या है ? वेद, उपनिषद्, गीता, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, सत्यार्थप्रकाश और इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों को प्रतिदिन पढ़ना, प्रतिदिन उनपर विचार करना, यह स्वाध्याय है। थोड़ा पढ़ो या अधिक, पढ़ो अवश्य। आजकल तो लोग प्रातः-काल समाचारपत्रों को लेकर बैठ जाते हैं। मैं समाचार पढ़ने का विरोधी नहीं। अखबार यदि चाहें तो देश का बहुत सुधार कर सकते हैं, परन्तु आजकल तो अखबार नारद मुनि का पार्ट अदा करते हैं। आज पंजाब में जो बेचैनी है, सीमा और भाषा-सम्बन्धी जो झगड़े हैं, इसका कारण पंजाब के कुछ समाचारपत्र ही तो हैं। ऐसे समाचारपत्रों को भी यदि आप पढ़ना चाहते हैं तो पढ़िये, परन्तु स्वाध्याय का वास्तविक अर्थ उन ग्रन्थों का पाठ करना है, जो सन्तों, महात्माओं, ऋषियों

और योगियों ने लिखे हैं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जो आदमी प्रतिदिन अच्छे ग्रन्थों का पाठ करता है, उसे उतना ही पुण्य मिलता है, जितना कोई व्यक्ति धन, अन्न, हीरे, सोने, मोती और पशुओं से'भरी हुई सारी पृथिवी को दान करके प्राप्त करता है।

महात्मा हंसराज की एक बात याद आती है मुझे। अपना जीवन उन्होंने दान दे दिया। बड़े भाई ५० रु० मासिक देते थे। उसपर निर्वाह करते थे वे। एक बार भाई अप्रसन्न हो गए। उन्होंने सहायता के रुपये देना बन्द कर दिया। महात्मा जी के पास कोई पूँजी तो थी ही नहीं। घर में कुछ भी नहीं था। केवल छः आने थे उनके पास। घर में खाने को भी नहीं था। तीन दिन इसी प्रकार बीत गए। पत्रों में उन दिनों महात्माओं के विरुद्ध लेख छप रहे थे। घबराकर उन्होंने सोचा—'मैं यह कौन-से मार्ग पर चल रहा हूँ ? इसमें दुःख ही दुःख है, सुख का नाम भी नहीं, तब उसे छोड़ क्यों न दूँ ?' इस विचार के उत्पन्न होते ही घबराहट के साथ अपने छोटे-से कमरे में टहलने लगे, इधर से उधर, उधर से इधर। चैन नहीं। मछली जैसे पानी के बिना तड़पती है, ऐसे उनका दिल तड़प रहा था। तभी वे अपने कमरे में रक्खी उस अलमारी के पास पहुँच गए जिसमें पुस्तकें रक्खी थीं। एक किताब को उन्होंने निकाला। उसका एक पृष्ठ खोला ; वहाँ लिखा था—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। गीता० २।४७॥

महात्मा जी ने मुझे बताया कि इन शब्दों को पढ़ते ही उनकी घबराहट दूर हो गई। ऐसा ज्ञान हुआ जैसे सच्चा और सीधा रास्ता मिल गया है। ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई सामने खड़ा कहता है, "अरे, तू घबरा गया तो क्यों ? तेरा काम केवल काम करना है, उसके फल की चिन्ता करना नहीं।

फल को भगवान् पर छोड़ दो, आगे बढ़ो !" उन्होंने बताया कि फिर कभी डगमगाना नहीं पड़ा, फिर कभी बेचैनी नहीं आई। यह है स्वाध्याय का फल। परन्तु स्वाध्याय केवल यही तो नहीं, एक और बात भी है।

अब समय हो गया पूरा। यह बात क्या है, यह कल बताऊँगा।

ओ३म् तत् सत् !

तीसरा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

कल मैं आपको बता रहा था कि ओ३म् की तीन मात्राओं की उपासना कैसी होती है। अ, उ, म्—ये तीन मात्राएँ इसमें हैं। तीन मात्राओं से, तीन विधियों से इसकी उपासना होती है। यह भी बताया था मैंने कि प्रश्नोपनिषद् के ऋषि ने उपासना के साथ किन-किन शर्तों को पूरा करने के लिए कहा। तीन साधनों का वर्णन कर रहा था मैं—तप, ब्रह्मचर्य तथा श्रद्धा। तप है शारीरिक साधना, ब्रह्मचर्य है मानसिक साधना, श्रद्धा है आत्मिक साधना। शारीरिक साधना का अर्थ यह है कि शरीर स्वस्थ होना चाहिए। इसके लिए तीन बातें आपको बताईं—हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्। अच्छी सात्त्विक वस्तुएँ खाओ, थोड़ा खाओ, नेक कमाई से खाओ। ब्रह्मचर्य का और मानसिक साधना का मार्ग भी बताया—स्वाध्याय, सत्संग और सेवा। ब्रह्मचर्य का मन से गहरा सम्बन्ध है। मन ठीक हो तो मैं ब्रह्मचारी हूँ, नहीं तो फिर ब्रह्मचर्य का अभिमान करने का लाभ नहीं। ब्रह्मचर्य का एक अर्थ उस वीर्य की रक्षा करना

है जो भोजन के पचने के पश्चात् शरीर में सात अवस्थाओं के बाद बनता है। परन्तु यह केवल एक अर्थ है। दूसरा अर्थ है ब्रह्म में विचरना; ऐसा अनुभव करना कि ऊपर-नीचे, दायें-बायें, आगे-पीछे हर ओर ब्रह्म ही ब्रह्म है। ऐसा विश्वास जिसको हो जाए, जिसके हृदय में यह विश्वास जाग उठे कि महामहिमावाली माँ की गोद में बैठा है, जैसे अपनी माता की गोद में हो, तो उसके लिए डर और भय क्या है ? उसके मन को डिगानेवाला कौन है ? डरानेवाला कौन है ?

मैंने आपको यह भी बताया कि स्वाध्याय, सत्संग और सेवा का क्या अर्थ है, इससे किस प्रकार लाभ होता है, किस प्रकार स्वाध्याय करनेवाला ठीक उस समय गिरावट से बच जाता है जबकि उसके पाँव डगमगाने लगते हैं। वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, गीता, रामायण, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सत्यार्थप्रकाश और इसी प्रकार के दूसरे ग्रन्थों को प्रतिदिन पढ़ना स्वाध्याय है, परन्तु जैसा कि कल मैंने कहा था, यह स्वाध्याय का केवल एक अर्थ है; दूसरा अर्थ है अपने-आपको पढ़ना, अपने-आपको देखना कि यह जो अपना-आपा है, यह ऊपर चला जा रहा है या नीचे गिर रहा है ? शुद्ध और पवित्र हो रहा है या गन्दा और मलिन ? परन्तु यह अपना-आपा क्या है ? यह स्थूल शरीर नहीं जिसे हम प्रतिदिन माँजते हैं और जो अन्त में मिट्टी में मिल जाता है। आत्मा भी नहीं क्योंकि वह न मैला होता है न साफ़, सर्वदा एक-सा रहता है, अपितु इन दोनों के साथ खड़ा सूक्ष्म शरीर जो जन्म-जन्म से आत्मा के साथ चला आया है, जन्म-जन्म तक इसके साथ चलता रहेगा। सृष्टियाँ बनती हैं और समाप्त हो जाती हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे बनते हैं और महाप्रलय में नष्ट हो जाते हैं, पर यह सूक्ष्म शरीर तब तक चलता रहता है जब तकइसके भाग समाप्त नहीं हो जाते। योगी जप-ध्यान लगाकर

दूसरों के भूत-भविष्य को बता देते हैं। जब वे कहते हैं कि फलाँ जन्म में आत्मा फ़लाँ रूप में था, उससे पहले फ़लाँ रूप में था तो इस सूक्ष्म शरीर को देखकर। वेद ने कहा—

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।।

यजु० ३४।४।।

'जिस योगी ने अपने चित्त को योग-साधना करके सिद्ध कर लिया है वह अपने और दूसरों के भूत, भविष्यत् और वर्तमान को देख लेता है।' क्यों देख लेता है ? इसलिए कि स्थूल शरीर बार-बार बनता है और नष्ट होता है ; सूक्ष्म शरीर जन्म-जन्म तक साथ चलता है। हज़ारों जन्म बीत जाते हैं, लाखों, कई बार करोड़ों, और सूक्ष्म शरीर समाप्त नहीं होता। पूर्व-जन्म में दो व्यक्ति भाई-बहन थे, अब पिता-पुत्र बन गए हैं, तो इनमें अगाध प्रेम होगा ; यदि शत्रु थे तो इनकी आपस में कभी नहीं बनेगी। योगी लोग समाधि में जाकर प्राणों को उठाकर ब्रह्मरन्ध्र में ले जाते हैं। वहाँ जैसे कैमरे में चित्र आता है, इसी प्रकार उस सूक्ष्म शरीर का चित्र आ जाता है जिसे वे देखना चाहते हैं। उसे देखकर वे बीते, आनेवाले और आज के समय की सब बातें बता देते हैं। यह सूक्ष्म शरीर सबके पास है, सबके अन्दर है; आपके अन्दर भी, मेरे अन्दर भी। इस सूक्ष्म शरीर को प्रतिदिन देखो ! जैसे कोई पुस्तक पढ़ता है वैसे प्रतिदिन पढ़ो ! देखो कि इसमें कोई नई मैल तो नहीं आ गई ? पुरानी मैल कम हुई अथवा नहीं ? कोई नई रोशनी जागी या नहीं ? यह है स्वाध्याय का अर्थ। अथर्ववेद में एक मन्त्र आता है—

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।।

अथर्व० ६।७।७०।१।।

ये चार वस्तुएँ हैं जिनसे मन पतित होता है—मांस,

शराब, जुआ और पराई स्त्री या पराए पुरुष के साथ सम्बन्ध। देखो, इसमें मांस की बात सबसे पहले कही है। ये चारों बातें मनुष्य को मार डालती हैं। इतना मैला कर देती हैं कि फिर इसे शुद्ध करने में वर्षों लग जाते हैं। स्वाध्याय का अर्थ यह है कि प्रतिदिन अपने सूक्ष्म शरीर की किताब को देखो, देखो कि इन चारों में से कोई बात तो इसमें नहीं लिखी गई? यदि लिखी गई है तो सँभलो! जो प्रतिदिन पढ़ता है, प्रतिदिन देखता है वह कभी-न-कभी सँभलता है अवश्य।

और फिर यदि अब नहीं पढ़ोगे, तो एक-न-एक दिन वह पुस्तक पढ़नी अवश्य पड़ेगी, खुलकर वह सामने आ जाएगी और एक-एक करके उसके पन्ने उठेंगे, एक-एक करके सब-कुछ सामने आयेगा, जब साँस समाप्त होने लगेंगे। जब हिचकी बँध जाती है, जब मृत्यु सामने आकर खड़ी हो जाती है, उस समय यह पुस्तक स्वयं ही खुल जाती है। मनुष्य इसे देखता है, देखता है कि इसमें बहुत-सी बुरी बातें लिखी गई हैं, देखता है कि इन्हें बदला नहीं जा सकता, इनके कारण आगे कितने ही कष्ट आनेवाले हैं। तब वह रोता है, आँखों से पानी की धारा बहने लगती है, आस-पास बैठे लोग कहते हैं, "अब नीर जारी हो गया, यह अब बचेगा नहीं।"

वास्तव में नहीं बचेगा। यह 'नीर' क्या है? पश्चात्ताप के आँसू जो सूक्ष्म शरीर की पुस्तक को देखकर बहते हैं। एक-एक पन्ना मरनेवाले के सामने आता है। प्रत्येक पन्ने पर लिखा है—तुमने यह बुरा कर्म किया, तुमने वह बुरा काम किया, और अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है, अब तुम बिच्छू बनोगे, साँप बनोगे, सूअर बनोगे, अब तुम वहाँ जाकर गिरोगे जहाँ दुःख के अतिरिक्त कुछ नहीं। यह सब-कुछ देखकर वह अभागा रोयेगा, नहीं तो और क्या करेगा? आँखों से आँसू न बहेंगे तो और क्या होगा? परन्तु,

अब पछताये होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।

अब रोने से क्या बनेगा ! रोना था तो उस समय रोता जब जीवन था, जब इस मैल को धोने का यत्न हो सकता था। उस समय सँभलना चाहिए था, उस समय स्वाध्याय करना चाहिए था उस सूक्ष्म शरीर का। उस समय प्रयत्न करके उसपर अच्छी बातें लिखनी चाहिए थीं।

परन्तु सभी लोग तो अन्तिम समय पर नहीं रोते। जो स्वाध्याय करते हैं सूक्ष्म शरीर का, जो प्रतिदिन उसपर अच्छी बातें लिखने का यत्न करते हैं, उनके सामने अन्तिम समय पर यह पुस्तक आती है। उसके एक पन्ने पर लिखा है, तूने फ़लाँ समय एक अनाथ बच्चे को फ़ीस देकर पढ़ाया ; एक और पन्ने पर लिखा है, फ़लाँ समय वह अंधी बुढ़िया रास्ता भटक गई थी तो तूने उसका हाथ पकड़कर उसे ठीक रास्ते पर चला दिया ; फ़लाँ जगह कुआँ बनवा दिया ; तालाब बनवा दिया ; मन्दिर बनवा दिया ; और अन्तिम पन्ने पर लिखा है, अब तू उत्तम जीवन में जायेगा, ऊँचे लोकों में जायेगा। ऐसा आदमी रोता नहीं। रोये क्यों ? मैंने गन्दे-फटे हुए कपड़े पहन रक्खे हैं, कोई मुझे सुन्दर कपड़े लेकर दे दे तो क्या मैं रोऊँगा ? एक व्यक्ति टूटे-फूटे झोंपड़े में रहता है, आप उसे महल बनवा देते हैं, कहते हैं—"चल, इस महल में चलकर रह, यह महल तेरा हुआ।" तब वह रोयेगा नहीं, हँसेगा। पुकारकर कहेगा—

जा मरने ते जग डरे, मेरे मन आनन्द।
मरने ते ही पाइये, पूर्ण परमानन्द॥

यह है स्वाध्याय की महिमा ! प्रतिदिन स्वाध्याय करने से मन ऊपर उठता है, मानसिक साधना के मार्ग पर मनुष्य आगे बढ़ता है।

अब सत्संग की बात सुनिये ! आर्यसमाज करौलबाग में

प्रतिदिन सत्संग होता है। आप इसमें आते हैं, बहुत बड़े भाग्य हैं आपके और धन्य हैं आप और ये लोग जो इस सत्संग का प्रबन्ध करते हैं। जैसे कोई मन्दिर में झाड़ देता है, उसकी गंदगी साफ़ कर देता है, इसी प्रकार यह सत्संग है। यह वह गंगा है जिससे मन का मैल धुल जाता है। ऐसा जादू है जो अनजाने में प्रभाव करता है।

एक वकील की बात सुनाता हूँ आपको। वकील साहब कभी-कभी सत्संग में जाते थे। उनका सात वर्ष का बच्चा भी साथ जाता था। वहाँ एक आदमी ने एक बार गाना गाया, "कड़वे बोल न बोल!" बच्चे को यह गाना अच्छा लगा, उसने याद कर लिया। जब कभी उसको समय मिलता, तब इस गीत को गाता फिरता—"कड़वे बोल न बोल!" एक दिन वकील साहब और उनकी धर्म-पत्नी में हो गई अनबन; रूठ गए दोनों। कई दिन बीत गए, एक-दूसरे से बोले नहीं। पति-पत्नी कब तक रूठे रहें! पति के मन में बार-बार आये कि वह मान जाये, पत्नी के मन में भी आये, परन्तु दोनों की यह इच्छा थी कि पहल दूसरा करे। पति दफ्तर से आते, अपने कमरे में बैठे रहते; पत्नी खाना बनाकर नौकर के हाथ भेज देती; पहल होने में न आती। एक दिन वकील साहब दफ्तर से आये, अपने कमरे में चले गए। इनके नन्हे बच्चे ने इनके कमरे में आकर गाना शुरू किया, "कड़वे बोल न बोल!" वकील साहब के हृदय में एक आशा जाग उठी; बच्चे से बोले, "बेटा, यह गीत अपनी माँ के कमरे में जाकर गा!" बच्चा माँ के कमरे में गया; वहाँ जाकर गाने लगा, "कड़वे बोल न बोल!" माँ ने कहा, "यहाँ क्या गाता है, जा अपने पिता जी के कमरे में जाकर गा!" बच्चा फिर पिता जी के कमरे में पहुँचा; बोला, "कड़वे बोल न बोल!" पिता ने कहा, "अरे, तुझे माँ के कमरे में जाकर गाने को

कहा था। वहाँ जाकर गा !" बच्चा फिर माँ के कमरे में पहुँचा। माँ ने कहा, "अरे, तुझे पिता के कमरे में जाने के लिए कहा था, जा वहाँ जाकर गा !" बच्चे ने दोनों कमरों के बीच में जाकर कहा, "तुम दोनों तो मुझे गाने नहीं देते, मैं अब यहाँ खड़ा होकर गाऊँगा।" और वह गाने लगा, "कड़वे बोल न बोल, रे भाई, कड़वे बोल न बोल !" पिता और माता ने बच्चे की भोली बोली को सुना। दोनों हँस पड़े। हँसी के फ़व्वारे में क्रोध की दीवार टूट गई। दोनों बच्चे के पास आ गये। एक-दूसरे की आँखों में देखकर हँसते हुए बोले, "कड़वे बोल न बोल !" घर में मुस्कराहट चमक उठी, क्रोध के बादल टुकड़े-टुकड़े हो गये। रोशनी जाग उठी।

क्यों ? इसलिए कि वह नन्हा-सा बच्चा सत्संग से छोटा-सा गीत सीख आया था, "कड़वे बोल न बोल !" अरे, यह सत्संग जादू है ! इस प्रकार प्रभाव करता है कि कई बार पता नहीं लगता कि कब प्रभाव हुआ।

विश्वामित्र का महर्षि वसिष्ठ से झगड़ा था। विश्वामित्र बहुत विद्वान् थे। बहुत तप उन्होंने किया। पहले महाराजा थे, फिर साधु हो गये। वसिष्ठ सदा उनको राजर्षि कहते थे। विश्वामित्र कहते थे, "मैंने ब्राह्मणों जैसे सभी कर्म किये हैं, मुझे ब्रह्मर्षि कहो।" वसिष्ठ मानते नहीं थे; कहते थे, "तुम्हारे अन्दर क्रोध बहुत है, तुम राजर्षि हो।"

अरे, यह क्रोध बहुत बुरी बला है। सवा करोड़ नहीं, सवा अरब गायत्री का जाप कर लें, एक बार का क्रोध इसके सारे फल को नष्ट कर देता है।

विश्वामित्र वास्तव में बहुत क्रोधी थे। क्रोध में उन्होंने सोचा, 'मैं इस वसिष्ठ को मार डालूँगा, फिर मुझे महर्षि की जगह राजर्षि कहनेवाला कोई रहेगा नहीं।' ऐसा सोचकर

एक छुरा लेकर, वे उस वृक्ष पर जा बेठे जिसके नीच बेठकर महर्षि वसिष्ठ अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। शिष्य आये; वृक्ष के नीचे बैठ गये। वसिष्ठ आये ; अपने आसन पर विराजमान हो गये। शाम हो गई। पूर्व के आकाश में पूर्णमासी का चाँद निकल आया। विश्वामित्र सोच रहे थे, 'अभी सब विद्यार्थी चले जाएँगे, अभी वसिष्ठ अकेले रह जायेंगे, अभी मैं नीचे कूदूँगा, एक ही वार में अपने शत्रु का अन्त कर दूँगा।' तभी एक विद्यार्थी ने नये निकले हुए चाँद की ओर देखकर कहा, "कितना मधुर चाँद है वह ! कितनी सुन्दरता है !" वसिष्ठ ने चाँद की ओर देखा ; बोले, "यदि तुम ऋषि विश्वामित्र को देखो तो इस चाँद को भूल जाओ। यह चाँद सुन्दर अवश्य है परन्तु ऋषि विश्वामित्र इससे भी अधिक सुन्दर हैं। यदि उनके अन्दर क्रोध का कलंक न हो तो वे सूर्य की भाँति चमक उठें।" विद्यार्थी ने कहा, "महाराज ! वे तो आपके शत्रु हैं। स्थान-स्थान पर आपकी निन्दा करते हैं।" वसिष्ठ बोले, "मैं जानता हूँ, मैं यह भी जानता हूँ कि वे मुझसे अधिक विद्वान् हैं, मुझसे अधिक तप उन्होंने किया है, मुझसे अधिक महान् हैं वे, मेरा माथा उनके चरणों में झुकता है।"

वृक्ष पर बैठे विश्वामित्र इस बात को सुनकर चौंक पड़े। वे बैठे थे इसलिए कि वसिष्ठ को मार डालें और वसिष्ठ थे कि उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे। एकदम वे नीचे कूद पड़े, छुरे को एक ओर फेंक दिया, वसिष्ठ के चरणों में गिरकर बोले, "मुझे क्षमा करो !"

वसिष्ठ प्यार से उन्हें उठाकर बोले, "उठो ब्रह्मर्षि !"

विश्वामित्र ने आश्चर्य से कहा, "ब्रह्मर्षि ? आपने मुझे ब्रह्मर्षि कहा ? परन्तु आप तो यह मानते नहीं हैं ?"

वसिष्ठ बोले, "आज से तुम ब्रह्मर्षि हुए। महापुरुष !

तुम्हारे अन्दर जो चाण्डाल था, वह निकल गया।" यह है सत्संग का जादू !

लाहौर में रहते थे एक छज्जू भगत। कई लोगों ने इनका चौबारा देखा होगा। एक दिन वे अपने उस चौबारे में बैठे थे; कुछ और लोग भी उनके साथ थे। नीचे फल बेचनेवाला एक आदमी आया। आवाज़ देकर उसने कहा, "अच्छे संगतरे ! अच्छे संगतरे भाई, अच्छे !" छज्जू अपने साथियों की ओर देखकर बोले, "सुनते हो यह आदमी क्या कहता है?" साथियों ने कहा, "संगतरे बेचता है भगत जी !" भगत जी बोले, "तुम समझे नहीं, ध्यान से सुनो ! वह कहता है, 'अच्छे संग-तरे'—जो अच्छे लोगों का संग करता है वह तर जाता है।" यह है सत्संग की महिमा ! मानसिक साधना के लिए यह दूसरी आवश्यक बात है। तीसरी बात है सेवा। परन्तु सेवा का अर्थ क्या है ? तीन प्रकार की शक्ति मनुष्य के पास होती है—बाहु-बल, बुद्धि-बल और धन-बल। इस शक्ति को केवल अपने लिए नहीं अपितु दूसरों की भलाई के लिए भी प्रयोग करना, यह सेवा है। महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के नियमों में यह बात स्पष्ट रूप में लिखी है; यह भावना कूट-कूटकर भरने का यत्न किया; उन्होंने कहा, "संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

आर्यसमाज केवल इस देश के लिए नहीं है; सभी देशों के लिए है; किसी एक राष्ट्र के लिए नहीं है; सभी राष्ट्रों के लिए है। आर्यसमाज न धर्म है, न सम्प्रदाय। वह एक आन्दोलन है, जिसका उद्देश्य है—मनुष्य को सुखी बनाना; जितनी शक्ति हमारे पास है, उसे दूसरों की भलाई में खर्च कर देना। इसलिए महर्षि ने आर्यसमाज के नियमों में लिखा, "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए,

अपितु दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझना चाहिए।"

यह है सेवा की भावना ! सेवा से मन बहुत जल्दी शुद्ध होता है ; अभिमान मिट जाता है। इससे पाप मिट जाता है। इसलिए जितनी भी शक्ति है, उसके अनुसार अपने जीवन में सेवा करो। और कुछ नहीं कर सकते तो अपने मुहल्ले के बच्चों को इकट्ठा करके उन्हें पढ़ने में मदद दो। पढ़ा नहीं सकते तो उन्हें दौड़ना सिखाओ, परेड करना सिखाओ। यह भी नहीं कर सकते तो उन्हें सभ्यता से उठना-बैठना, खाना-पीना सिखाओ। यह भी नहीं कर सकते तो आर्यसमाज मंदिर में आ जाओ, अपने हाथ से यहाँ झाड़ू दो, लोगों के जूते सँभालने की सेवा करो। यह भी न हो सके तो बाज़ार में चले जाओ ; जहाँ केले की दुकान है, वहाँ खड़े हो जाओ। लोग दुकान से केले लेते हैं, वहीं छीलकर उसे खाते हैं, छिलके को सड़क पर फेंक देते हैं; तुम इस छिलके को उठाकर एक ओर रख दो जहाँ वह किसी के पैर के नीचे न आए, किसी के फिसलने का कारण न बने। साधारण-सी बात लगती है यह, परन्तु केले का छिलका ग़लत स्थान पर पड़ा हो तो कैसा भयानक परिणाम उत्पन्न करता है, यह तो मैंने देखा। रुड़की में एक सज्जन रहते थे। उनकी घरवाली बहुत बीमार थी। घर से शीशी लेकर वे डॉक्टर साहब के पास गये कि जल्दी से दवा लाकर पत्नी को पिलायें। दौड़े हुए चले जाते थे कि रास्ते में केले का एक छिलका पाँव के नीचे आ गया, उसपर से फिसले, सड़क पर जा गिरे। हाथ का शीशी टूट गई, टूटी हुई शीशी गर्दन में लगी, बड़ी नस कट गई, वहीं मर गये। यदि उस छिलके को किसी ने उठा दिया होता तो एक आदमी की जान बच जाती। सेवा छोटी हो या बड़ी, सदा महान् होती है।

आर्यसमाज देश के अन्दर बढ़ा तो निश्चित रूप से इसलिए कि उसने सेवा के कार्य को अपनाया। जहाँ-कहीं, जब-कभी, जो-कोई कष्ट हुआ, वहाँ आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता पहुँच गए। भूचाल आए या बाढ़, अकाल पड़ जाए या बलवा हो जाए, आग लग जाए या पानी फट पड़े, आर्यसमाज के सेवक वहाँ पहुँचते। काँगड़े का भूचाल मुझे याद है। मैंने भी वहाँ कुछ कार्य किया, मैंने भी टोकरी उठाई। सन् १९०५ में पृथिवी वहाँ पर हिली, पहाड़ हिले, चट्टानें हिलीं, धरती का सीना फट गया, मकान गिरे, यात्री उनमें दब गए, पुजारी उनमें दब गए। आर्यसमाज सबसे पहली संस्था थी, जिसने अपने स्वयंसेवकों को वहाँ भेजा। डी० ए० वी० कॉलिज के विद्यार्थी वहाँ गए, झोंपड़ियाँ बनाईं। उन्होंने सेवा का कार्य आरम्भ कर दिया। बीकानेर में अकाल पड़ा तो स्वर्गवासी लाला लाजपतराय जी और महात्मा हंसराज जी वहाँ पहुँच गए। गाँव-गाँव में सहायता-केन्द्र खोल दिये। स्थान-स्थान पर कार्य होने लगा। इसी प्रकार हर स्थान पर कार्य हुआ, चाहे कोयटे का भूकम्प हो या मालाबार का हत्याकाण्ड, एबटाबाद का फ़िसाद हो या कोहाट का बलवा। छत्तीसगढ़ उड़ीसा के अन्दर, बिहार के अन्दर, हर जगह, हर बार आर्यसमाज इस प्रकार पहुँचा जैसे सेवा ही उसका परम उद्देश्य है। हर जगह पहुँचकर इसने सेवा की। मेरा सौभाग्य था कि मुझे इनमें से प्रत्येक स्थान पर जाने का अवसर मिला। पूज्य महात्मा हंसराज जी ने हर स्थान पर मुझे भेजा। प्रत्येक स्थान पर सेवा करते हुए मैंने देखा कि इस कार्य से कितनी प्रसन्नता होती है! मन कितना निर्मल होता है! बिहार में भूकम्प आया तो मैं कलकत्ता में था। महात्मा हंसराज जी का तार वहाँ पहुँचा कि बिहार पहुँचो, देखो कि सहायता और सेवा का कार्य कैसे करना है। पं० ऋषिराम जी को और सेठ

दीपचन्द जी पोद्दार के परिवार के श्री आनन्दीप्रसाद को साथ लेकर मैं बिहार पहुँचा। मुंगेर के नगर में जाकर देखा कि वहाँ हज़ारों लोग दब गये हैं। दोपहर के समय भूचाल आया। दुकानें खुली थीं, ग्राहक दुकानों से सामान ख़रीद रहे थे, भूकम्प ने सबको गिरती दीवारों और छतों के नीचे दबा दिया; दूकानदार भी दब गए, ग्राहक भी। मलबे को हटाने का कार्य आरम्भ हुआ तो पहले दिन काफ़ी लोग जीवित निकले, कुछ घायल, कुछ सिसकते हुए, कुछ ठीक। तीसरे और चौथे दिन भी कुछ लोग जीवित निकले, बाकी केवल लाशें। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, त्यों-त्यों लाशें मिलने लगीं; परन्तु सोलहवें दिन एक मकान का मलबा उठाया गया तो एक आदमी बिल्कुल अच्छा-भला, बिल्कुल जीवित निकल आया। उसे देखकर हम कुछ आश्चर्यचकित हुए। किस प्रकार ईश्वर-विश्वास हमारे हृदयों में झूम के जाग उठा, यह तो हम ही जानते हैं। हमने उससे पूछा कि तू इतने दिन जीवित कैसे रहा? वह बोला, "मैं केले बेचता हूँ। केलों का ढेर अपने पास रक्खे बैठा था कि पृथिवी हिल उठी। छत का शहतीर मेरे ऊपर आ गिरा, बाकी छत उसके ऊपर आई, इसलिए मुझे चोट नहीं लगी। तभी एक बार पृथिवी फिर हिली, मेरे ऊपर गिरे मलबे में से एक ओर से हवा आने लगी, पता नहीं किस ओर से, परन्तु उस हवा ने मुझे मरने से बचा दिया। तभी पृथिवी एक बार फिर हिली, दूकान का फ़र्श टूट गया, उससे पानी उछल पड़ा। इतने दिनों तक मैं उस पानी को पीकर और केले खाकर जीवन व्यतीत करता रहा। कल केले समाप्त हो गए, आज पानी थोड़ा रह गया, मैंने समझा मैं बचूँगा नहीं, परन्तु तभी मलबे के ऊपर कुदालों की आवाज़ आने लगी। आपने मुझे बाहर निकाल लिया।" उस व्यक्ति को देखकर मेरे हृदय ने पुकारकर कहा—

जाको राखे साइयाँ, मार सके ना कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग वैरी होय॥

अपितु ऐसी प्रसन्नता इसमें नाच उठी जैसी पहले कभी नहीं हुई थी। यह है सेवा का फल! सेवा से मानसिक बल बढ़ता है। मानसिक साधना पूरी होती है। सेवा मनुष्य को बहुत ऊपर ले जाती है।

परन्तु जो लोग ओ३म् का जाप करना चाहते हैं, उनके लिए केवल शारीरिक और मानसिक साधना तो पर्याप्त नहीं। आत्मिक साधना भी इसके लिए आवश्यक है। आत्मिक साधना का मार्ग है श्रद्धा। आजकल की सभ्यता का सबसे बड़ा पाप यह है कि इसने मनुष्य की श्रद्धा को समाप्त कर दिया है। हर स्थान पर आलोचना, हर बात में दलीलबाज़ी, हर जगह बाल की खाल उतारना, यही हमने सीख लिया है; परन्तु यह कल्याण का मार्ग तो नहीं है, चैन का मार्ग भी नहीं है। श्रद्धा के बिना आत्मा की उन्नति के मार्ग पर एक भी पग नहीं उठाया जा सकता। ऋग्वेद के दशवें मण्डल के १५१वें सूक्त में आता है—

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥

'श्रद्धा से अग्नि जलती है, श्रद्धा से उसमें आहुति डाली जाती है। श्रद्धा ही मुख्य है। श्रद्धा ही आनन्द की चोटी है। हम ऊंची आवाज़ से कह सकते हैं कि श्रद्धा के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता।' यह है श्रद्धा का महत्त्व! अपने अन्दर श्रद्धा उत्पन्न करो। इसके बिना आत्मोन्नति के मार्ग पर एक पग भी तुम चल नहीं सकोगे। यही नहीं, वेद भगवान् आगे चलकर कहते हैं—

श्रद्धा के बिना न वायु रक्षा करती है, न जल, न अग्नि। श्रद्धा से ही सौभाग्य मिलता है, सुख मिलता है, और चैन

मिलता है। (मन्त्र चौथा)

इससे अगले मन्त्र में कहा है—

श्रद्धा को हम प्रातः बुलाते हैं, श्रद्धा को हम दोपहर को बुलाते हैं, शाम के समय बुलाते हैं, रात के समय बुलाते हैं। हे श्रद्धे ! तू ही हमारी सारी कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है। (मन्त्र पाँचवाँ)

यह है श्रद्धा की महिमा ! परन्तु प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह श्रद्धा बढ़ेगी कैसे ? इसके तीन उपाय हैं—(१) ध्यान, (२) ज्ञान, और (३) अटल विश्वास।

ध्यान क्या है ? इसका उत्तर उस वार्तालाप से मिलता है जो भगवान् राम और गुरु वसिष्ठ में हुआ। भगवान् राम ने पूछा, "गुरुदेव ! इस शरीर को हम सब-कुछ खिलाते हैं, आत्मा को क्या खिलायें ?"

भगवान् राम ही ऐसा प्रश्न पूछ सकते थे। गुरु वसिष्ठ ही उसका उत्तर दे सकते थे। आजकल तो कोई आत्मा की बात ही नहीं करता; आजकल शरीर ही हमारे समक्ष है। इसको खिलाओ-पिलाओ, इसके लिए कपड़े सिलवाओ, इसके लिए मकान बनवाओ और फिर एक दिन इसे मरघट में ले-जाकर छोड़ आओ। यह है इसका परिणाम ! कितने लोग प्रतिदिन वहाँ पहुँचते हैं ? कितने व्यक्ति इस बात को याद रखते हैं कि अन्ततः इसे वहाँ जाना है ? कितने लोग समझते हैं कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, मैं इससे अलग हूँ, भिन्न हूँ ?

कई भाई मुझे कहते हैं, "आनन्द स्वामी, हमें अपने साथ रख ले।"

मैं पूछता हूँ, "क्या करोगे साथ रहकर ?"

वे कहते हैं, "आनन्द स्वामी की सेवा करेंगे।"

मैं हँसकर कहता हूँ, "भाई, इसकी सेवा तुम क्या करोगे ? इसकी सेवा मैं जैसी करता हूँ, ऐसी तुम नहीं कर सकते। इसे

खिलाता हूँ, पिलाता हूँ, नहलाता हूँ, कपड़े पहनाता हूँ, इसे गुसलखाने में भी ले जाता हूँ, तुम क्या इसकी इतनी सेवा कर सकते हो ?"

मैं यह नहीं कहता कि शरीर की रक्षा नहीं करनी चाहिए। करनी चाहिए अवश्य, क्योंकि आत्मा इसके अन्दर है। यही इसका मूल्य है। यह राजा जब चला जाता है, तब इसके झोंपड़े का कोई मूल्य नहीं रहता। तब सब लोग कहते हैं—इसे शीघ्र ले चलो, मरघट में छोड़ आओ।

पिछले वर्ष मैं कैलास की यात्रा के लिए गया था न ! भारत से तिब्बत की ओर बढ़े तो बीच में पिस्सुलेक घाटी १६,७५० फ़ीट ऊँची पहाड़ी आती है। इसे पार करके नीचे तिब्बत का चटियल और रेतीला मैदान आता है—सागर के धरातल से १५,००० फ़ीट ऊँचा, इसलिए इसे संसार की छत कहते हैं। २७ दिन इस विस्तृत मैदान में हम घूमते रहे। हर ओर चट्टानें, हर ओर रेत, कोई वृक्ष नहीं, कोई पौधा नहीं। एक दिन मैंने आश्चर्य से अपने गाइड से पूछा, "कीचखम्बा ! इस देश में वृक्ष नहीं, लकड़ी भी नहीं, मर जाने पर लोगों को जलाते कैसे हैं ?"

कीचखम्बा ने कहा, "आगे चलकर बताऊँगा।"

आगे गये हम, तो दाईं ओर रेत का एक ऊँचा टीला था। कीचखम्बा ने कहा—"यह वह स्थान है जिसे आप पूछते थे। इसे पैरी कहते हैं। तीन पुजारी यहाँ रहते हैं। जब किसी के यहाँ कोई आदमी मर जाता है तो उसके रिश्तेदार उसे यहाँ ले आते हैं। पुजारी मुर्दे को काटकर, छोटे-छोटे टुकड़े करके इस टीले पर डाल जाते हैं, तब शंख बजाते हैं। शंख के बजते ही सैकड़ों पक्षी आकर उन टुकड़ों को खाने लगते हैं। कुछ ही समय में सारी लाश समाप्त हो जाती है।"

मैंने उस टीले की ओर देखकर दिल ही दिल में कहा, 'हे

भगवान् ! मुझे तू तिब्बत में मत मारियो ! करौलबाग में चलकर मारियो, नहीं तो यहाँ तो मेरा मुर्दा खराब होगा।'

परन्तु, मुर्दा खराब हो या अच्छा, इस शरीर का मूल्य क्या है ? बहुत सँभाल के हम इसे रखते हैं, फिर एक दिन मिट्टी में दफ़ना देते हैं, नदी में बहा देते हैं, आग में जला देते हैं या टुकड़े करके पक्षियों के आगे डाल देते हैं कि वे आयें और इसे समाप्त कर दें। इसका मूल्य केवल तब तक है जब तक आत्मा इसके अन्दर है। आत्मा के कारण ही इसका मूल्य है। जिसके कारण इसका मूल्य है उसकी हम कभी चिन्ता नहीं करते। इसके सम्बन्ध में कभी यह भी नहीं सोचा कि आज इसे कुछ खिलाया या नहीं।

याद रक्खो ऐ दुनिया के लोगो ! आत्मा यदि भूखी रहेगी तो कभी कुछ नहीं बनेगा। शरीर को भोजन अवश्य दो। जब तक इसके अन्दर आत्मा है, तब तक इसे भोजन देना आवश्यक है, परन्तु यह मत भूलो कि जिसके कारण शरीर की रक्षा करते हो, उसको भोजन देना भी आवश्यक है।

इसलिए भगवान् राम ने पूछा, "गुरुदेव ! शरीर को हम प्रतिदिन भोजन देते हैं, आत्मा को क्या खिलायें ?"

गुरु वसिष्ठ ने उत्तर दिया, "राम ! इस आत्मा की भेंट ध्यान ही है और ध्यान ही इसका बड़ा अर्चन है, वही इसका पूजन है, उसके बिना यह आत्मा कभी प्राप्त नहीं होता।"

ध्यानोपहार एवात्मा ध्यानमस्य महार्चनम्।
बिना तेनेतरे णायमात्मा लभ्यते एव नो॥

तो श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए पहली चीज़ है यह ध्यान। महर्षि दयानन्द ने कहा, "प्रत्येक आर्य को कम-से-कम दो घण्टे ध्यान लगाना चाहिए, क्योंकि ध्यान के बिना आत्मा में जागृति उत्पन्न नहीं होती, वह प्रकाशित नहीं होती।"

मेरा अनुभव भी यही कहता है कि जब तक ध्यान में न

जाओ, तब तक आत्मा का पता नहीं लगता। ध्यान में पहुँचकर ही इसके दर्शन होते हैं। ध्यान में ही वह ऋतम्भरा बुद्धि उत्पन्न होती है जो वास्तविकता को सामने लाकर खड़ा कर देती है। इसके उत्पन्न होते ही अन्दर की ज्योति जग जाती है, अँधेरे का विनाश हो जाता है।

दुनिया में हम देखते हैं कि चोर, उचक्के और दूसरे अपराधी तभी तक निर्भय घूमते हैं जब तक सूर्य की रोशनी न हो; सूर्य की रोशनी होते ही वे सब भागते हैं, कहीं दिखाई नहीं देते। अन्दर की दुनिया में भी यही हाल है। अन्दर का सूर्य जब चमकता है, अपनी उस ज्योति को फैलाने लगता है जो करोड़ों और अरबों सूर्यों की रोशनी के समान है, तब पाप और अनाचार के चोर भाग जाते हैं, अँधेरा भाग जाता है, स्याही भाग जाती है। तब इस महान् ज्योति में आत्मा के दर्शन होते हैं। कैसे होते हैं, यह फिर कभी बताऊँगा।

ध्यान के बाद श्रद्धा को पैदा करने का दूसरा साधन ज्ञान है। ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक प्रकृति के सम्बन्ध में, दूसरा आत्मा के सम्बन्ध में। यह बिजली, नदियाँ, तारे, सितारे, चाँद, सूर्य, हवा, पानी, आग, यह सब प्रकृति है। प्रकृति के पृथिवी, फूल, पत्ते, वृक्ष, पहाड़, विभिन्न रूप हैं। इनसे सम्बन्धित ज्ञान को प्राप्त करके आत्मा से सम्बन्धित वास्तविकता को जानना पड़ता है, समझना पड़ता है कि आत्मा क्या है, और वह क्या है जो आत्मा नहीं।

पंजाब में मकान बनाने से पूर्व लोग 'गौ' बनाते हैं, दिल्ली में शायद उसे 'पैड़' कहते हैं। प्रकृति के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पैड़ बनाई जाती है। इसको कहते हैं अविद्या के द्वारा विद्या को प्राप्त करना, अनात्म की खोज से आत्मा के पास पहुँचना। प्रकृति के रूप को अच्छी प्रकार देख लेने और समझ लेने के पश्चात् भक्त जब आत्मा को

देखता है तो पुकारकर कहता है, 'ओ ठगिनी माया ! मैंने तुझे देख लिया। मैंने तेरी वास्तविकता को पहचान लिया, पेट भर गया मेरा। अब मैं उसके पास जाऊँगा जो तेरी तरह चंचल नहीं, बदलता नहीं, धक्के नहीं खाता, जो शान्त और निश्चल है, जो सबको चलाता है स्वयं नहीं चलता, जो सबको खिलाता है स्वयं नहीं खाता, जो सबको देखता है, सबको जानता है, उसके पास जाना है मुझे। वह मेरा है, तू मेरी नहीं, तू किसी की भी नहीं।' यह है ज्ञान की महिमा, ज्ञान से श्रद्धा उत्पन्न होने का उपाय !

तीसरी बात है अटल विश्वास—यह विश्वास कि भगवान् है। परन्तु आजकल तो बहुत-से लोग कहते हैं कि 'भगवान् है ही नहीं।' कुछ और लोग कहते हैं कि 'यदि है तो सोया पड़ा है, कुछ करता नहीं।' और कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि 'यदि सोया नहीं पड़ा है तो बहुत बूढ़ा हो गया है, उससे कुछ होता नहीं।'

कौन उन्हें बताये कि ईश्वर आज भी सुनता है, सदा सुनता आया है, सदा सुनता रहेगा ? पुकारनेवाला चाहिए, सुननेवाला तो सामने खड़ा है, वह कभी कहीं नहीं गया। सामवेद १०१वें मन्त्र में कहता है, "जीवन को श्रीवाला (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-वाला) बनाने के लिए मेधा बुद्धि को परमात्मा से माँगो।" इसका वर्णन सामवेद के ३४६वें मन्त्र में आता है—"हे महान् परमेश्वर ! जो मनुष्य अपने-आपको आपके अर्पण कर देता है, जो शारीरिक और मानसिक बल-वाला है, इन्द्रियों का स्वामी है, उसकी टेर आप अन्तर्धान होकर सुनते हैं।"

वह अवश्य सुनता है, उसे पुकारकर देखो, सच्चे हृदय से पुकारो, अटल विश्वास के साथ पुकारो, उसका कीर्तन करते जाओ, यूँ अनुभव करो कि वह हर ओर है। हर समय उसके

गुणों को याद करो, उसमें खो जाओ, फिर कुछ कहके देखो कि वह बात पूरी होती है या नहीं। महर्षि दयानन्द 'ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका' में कहते हैं, "साधारण पानी से लेकर मोक्ष तक भगवान् से माँग।" माँग कि वह देनेवाला है, माँग कि उसके भण्डार में किसी वस्तु की कमी नहीं। जो व्यक्ति इस प्रकार अटल विश्वास के साथ ईश्वर के नाम का कीर्तन करते हैं, उनकी वाणी में ऐसी मिठास, ऐसा आकर्षण आ जाता है कि सुननेवाले मोहित हो जाते हैं। अकबर के दरबार का गवैया था तानसेन। कहते हैं कि वह जब मल्हार गाता तो वर्षा होने लगती। जब वह दीपक राग गाना आरम्भ करता तो दीपक ज़ल जाते। एक दिन अकबर ने कहा, "तानसेन! यह सब-कुछ तुमने जिससे सीखा है, उसका संगीत हमें भी सुन-वाओ!" तानसेन ने कहा, "शहंशाह! मेरे गुरु स्वामी हरिदास हैं, आपके दरबार में वे नहीं आयेंगे। मेरी तरह उन्हें आपसे कुछ लेना नहीं है। वे जंगल में रहते हैं पत्तों की झोंपड़ी बनाकर। वहीं कहीं मौज आ जाए तो अपना दुतारा लेकर गाने लगते हैं, किसी के लिए वे गाते नहीं।" अकबर ने कहा, "वे नहीं आ सकते, तो चलो हम उनके पास चलें, एक बार उनके दर्शन तो कर लें!"

तानसेन बादशाह को लेकर उस जंगल में गये, जहाँ हरिदास स्वामी रहते थे। देखा—हरिदास कुटिया के बाहर ध्यान में मग्न हुए बैठे हैं, चुपचाप शांत। एक दुतारा उनके पास पड़ा है परन्तु वह भी बेआवाज़।

बादशाह ने धीरे-से कहा, "तानसेन! यहाँ आकर भी क्या हम प्यासे जाएँगे? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं कि स्वामी हरिदास गाने लगें?"

तानसेन ने कहा, "प्रयत्न करता हूँ शहंशाह, आप चुपचाप खड़े रहिये!"

और अपनी सितार उठाकर उसने बजाना शुरू कर दिया। थोड़ा ठीक बजाया, फिर जान-बूझकर ग़लत बजाने लगे। हरिदास ने सुना तो झुँझला उठे; बोले, "ग़लत बजाते हो तानसेन, सुनो!" और अपना दुतारा उठाकर वे बजाने लगे। उसके साथ-साथ गाने लगे। जंगल का आकाश गूँज उठा। वृक्ष और पौधे झूम उठे। जंगल के हिरन स्वामी हरिदास के पास आकर खड़े हो गए। जंगल के पक्षी शान्त हो गये। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे चलती हुई हवा भी ठहर गई। बादशाह मस्त हो गये। कितनी देर हो गई, यह भी उन्हें पता नहीं लगा। अन्ततः जब हरिदास ने गाना बन्द किया तो बादशाह और तानसेन प्रणाम करके वापस आ गये। रास्ते-भर बादशाह बोल नहीं सके। संगीत की मधुर ध्वनि अभी तक उनके कानों में गूंज रही थी। रात्रि के समय बादशाह ने कहा, "तानसेन! तुम बहुत अच्छा गाते हो, भारतवर्ष में सबसे बड़े गायक हो तुम, फिर भी तुम्हारे गाने में वह रस क्यों नहीं, वह मस्ती क्यों नहीं जो स्वामी हरिदास के गाने में है?" तानसेन ने हाथ जोड़कर कहा, "शहंशाह! मुझमें और हरिदास में बहुत अन्तर है। मैं हूँ दिल्लीपति का गवैया, दिल्लीपति के लिए गाता हूँ। स्वामी हरिदास जगत्पति के गायक हैं; उसके लिए गाते हैं, जो करोड़ों दिल्लीपतियों को उत्पन्न और नष्ट कर देता है। जितना गुड़ हो उतना ही मीठा होता है। वे बड़े दरबार के गायक हैं, मैं छोटे दरबार का गायक हूँ।"

अकबर ने सुना, सोचा और चुप हो गया। धीरे-से उसने अपने मन में कहा, "जो भगवान् के गुण गाता है, उसकी वाणी में रस होगा ही।"

परन्तु अब समय पूरा हो गया है, बाकी बात कल कहूँगा।

ओ३म् तत् सत्!

चौथा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

ओ३म् की महिमा का वर्णन करते हुए प्रश्नोपनिषद् के पाँचवें प्रश्न की बात हम कह रहे थे। हमने देखा कि ओ३म् की एक मात्रावाली उपासना से धन और दौलत मिलते हैं, दो मात्रावाली उपासना से धन और शान्ति प्राप्त होते हैं। तीन मात्रावाली उपासना से धन भी मिलता है, शान्ति भी मिलती है, प्रभु के दर्शन भी होते हैं। तब हमने यह भी देखा कि ओ३म् की उपासना के लिए तीन आधारशिलाएँ हैं–तप अर्थात् शारीरिक साधना, ब्रह्मचर्य अर्थात् मानसिक साधना, और श्रद्धा अर्थात् आत्मिक साधना। इनपर विचार करते हुए हमने देखा कि शारीरिक साधना के लिए तीन नियमों पर चलना आवश्यक है। ये नियम हैं—हितभुक्, मितभुक् और ऋतभुक्। अच्छी वस्तुएँ खाओ, थोड़ा खाओ, नेक कमाई से खाओ। मानसिक साधना के लिए तीन नियम हैं—स्वाध्याय, सत्संग और सेवा। और अन्त में आत्मिक साधना के भी तीन नियम हैं—ध्यान, ज्ञान, और अटल विश्वास।

अटल विश्वास की बात सुना रहा था मैं। अटल विश्वास का अर्थ यह नहीं कि हम भगवान् के केवल नाम का स्मरण करें, अपितु यह भी है कि हम हर समय उसको अपने सामने, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, प्रत्येक स्थान पर अनुभव करें। देखें कि हमारा हँसना, रोना, खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना, हमारा सुख और दुःख सब उसमें हो रहा है। देखें कि संसार के प्रत्येक पदार्थ में वह दृष्टिगोचर हो रहा है।

हर वस्तु में उसकी ज्योति है। हर वस्तु में उसकी शक्ति है। कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् छिपा बैठा है। परन्तु जो मानते हैं, उनके लिए तो वह छिपा हुआ नहीं। वह तो इस खेल को देखकर मुस्कराता हुआ कहता है—

साफ़ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं।
खूब पर्दा है कि चिलमन से लगे बैठे हैं॥

जिसके हृदय में अटल विश्वास जाग उठे, उसके लिए चिलमन भी शेष नहीं रहती। पर्दे उठ जाते हैं, उसके लिए अँधेरे हट जाते हैं, नक़ाब समाप्त हो जाते हैं और वह पुकार के कहता है—

शोख़ी ने तेरी लुत्फ़ न रक्खा हिजाब में।
जलवे ने तेरी आग लगा दी नक़ाब में॥

यह है अटल विश्वास का रूप! जिधर देखो उसको देखो, जो माँगो उससे माँगो। उसके सिवा और किसी के सामने हाथ मत फैलाओ, और किसी के सामने माथा मत झुकाओ। परन्तु यह तो अटल विश्वास की केवल एक बात है। दूसरी बात यह है कि जो कुछ चाहते हो, उसके लिए परिश्रम अवश्य करो, पसीना बहा दो, जी-जान से कोशिश करो। अपने बल और बुद्धि के अनुसार प्रयत्न अवश्य करो। परन्तु इस यत्न के बाद जो फल मिले, उसपर सन्तोष करो। जो ऐसा करता है वह अटल विश्वासी है।

परन्तु कुछ लोग तो भगवान् को भी गालियाँ देते हैं। पाकिस्तान बनने के बाद जो विनाश हुआ, लोगों को जो कष्ट हुआ, इसने कितने ही लोगों के विश्वास का खोखलापन प्रकट कर दिया। एक दिन मैं 'मिलाप' के दफ़्तर में बैठा था तो मैले-कुचैले कपड़े पहने एक सज्जन वहाँ आ गये। उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, सिर के बाल बिखरे हुए थे। मैं पहचान नहीं सका। परन्तु ध्यान से देखा तो पता चला कि वह तो

मेरे एक पुराने सहपाठी हैं। 'जलालपुर जट्टाँ' में कभी मेरे साथ पढ़ा करते थे। प्यार से मैंने उनको बिठाया; बोला, "आओ मेरे भाई, सुनाओ क्या हाल है तुम्हारा?" मेरी बात सुनते ही वह फूट-फूटकर रोने लगे। बहुत रो लिये तो मैंने कहा, "देखो, सन्तोष करना चाहिए। जो होना था वह हो गया, अब वह वापस नहीं आयेगा। परमात्मा का नाम लो, उससे शान्ति मिलेगी।" परमात्मा का नाम सुनते ही उसके अन्दर छिपी हुई बाढ़ जैसे जाग उठी; चिल्लाकर उसने कहा, "देख लिया है तुम्हारा परमात्मा।" और फिर इतनी गाली परमात्मा को दीं कि तौबः! ऐसे व्यक्ति को अटल-विश्वासी नहीं कहते। ऐसे लोगों ने परमात्मा को केवल अपनी इच्छा का दास समझ रक्खा है। वह इन्हें इनकी इच्छानुसार देता जाये तो अच्छा है, न दे तो परमात्मा ही नहीं; इससे बुरा कुछ नहीं। वास्तव में यह विश्वास नहीं, नीचता है। सरासर परमात्मा का विश्वासी इस नीचता के वशीभूत नहीं हो सकता। हर हाल में वह प्रसन्न रहता है। प्रसन्नता कभी उसका साथ नहीं छोड़ती। याद रक्खो, जो व्यक्ति हर समय प्रसन्न नहीं रहता, वह परमात्मा को नहीं पा सकता। परमात्मा का दर्शन मिलता है चित्त की एकाग्रता से और चित्त की एकाग्रता मिलती है प्रसन्नता से। ईश्वर का दर्शन केवल उसको मिलता है जो हर समय प्रसन्न रहता है।

कितने ही सज्जन मेरे पास आते हैं; कहते हैं, हम ध्यान में बैठते हैं तो चित्त नहीं लगता। अरे लगे कैसे? चित्त में जो तुमने चिन्ता की ज्वाला जला रक्खी है वहाँ पर प्रभु-दर्शन की ठण्डक आये तो कैसे? ईश्वर का दर्शन करना चाहते हो तो चिन्ताओं को हृदय से निकाल दो। याद रक्खो, जो सच्चा विश्वासी है उसे कभी चिन्ता होती ही नहीं। उसके मन में भगवान् रहते हैं; चिन्ता को वहाँ स्थान ही नहीं

मिलता। एक कवि ने बहुत सुन्दर शब्दों में कहा—

प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि, आप पथिक फिर जाय॥

कहाँ रहेगा चिन्ता का पथिक? सराय में तो जगह है ही नहीं। वापस चला जाएगा यात्री, दूर रहेगी चिन्ता। केवल एक आनन्द और विश्वास भरा रहेगा वहाँ। चिन्ता तो उनको होती है जिनका विश्वास डाँवाडोल है; जो मानते हैं, पर नहीं मानते; जानते हैं, परन्तु कुछ नहीं जानते। ऐसे लोग चिल्लाकर कहते हैं—

ओ दुनिया बनाने वाले बता, अंजाम हमारा क्या होगा?
तक़दीर ख़फ़ा, तदबीर ख़फ़ा, जीने का सहारा क्या होगा?

ना भाई! ऐसे विश्वास से कार्य नहीं चलेगा। तक़दीर खफ़ा हो, तदबीर खफ़ा हो, तो भी मेरा वह मनमोहन, प्रीतम प्यारा शक्तिवाला परमेश्वर तो है। चिन्ता करनी है तो वह करेगा। मेरे हृदय में चिन्ता क्यों?

मुश्किल पड़ी तो क्या है, मुश्किलकुशा तो है।
सिर पर पड़ी तो क्या है, सिर पर ख़ुदा तो है॥

ऐसे विश्वासवाले व्यक्ति घबराते नहीं। तूफ़ान उठते हैं, भूकम्प आते हैं, ज्वालाएँ नाचती हैं, तो भी वे चिन्ता नहीं करते। तूफ़ान को देखकर वे विश्वास के साथ कहते हैं—

यदि नाथ का नाम दयानिधि है,
तो दया भी करेंगे कभी न कभी।
जब तारनहार कहावत है,
भव पार करेंगे कभी न कभी॥

यह है अटल विश्वास! जिसके मन में यह जाग उठे, वह फिर किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता, किसी से कुछ नहीं माँगता, केवल प्रभु को पुकारता है, उससे माँगता है।

बादशाह अकबर एक दिन जंगल में आखेट कर रहे थे।

भटक गये, रास्ता भूल गये। देर हो गई तो प्यास सताने लगी, भूख सताने लगी। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे प्राण होंठों पर आ गये हों। तभी एक खेत देखा। उसके किनारे पर एक किसान खड़ा था। किसान के पास जाकर बोले, "तुम्हारे पास कुछ खाने को है ?"

किसान ने कहा, "क्यों नहीं, आओ बैठो।" और बादशाह को उसने अपने पास की रूखी-सूखी रोटी खिला दी; दूर से लाकर पानी भी पिला दिया। खा-पीकर बादशाह प्रसन्न हुआ तो किसान से बोला, "तुम क्या काम करते हो ?" किसान ने कहा, "खेती-बाड़ी करता हूँ, बहुत कठिनता से जीवन-निर्वाह होता है।" अकबर ने कहा, "सुनो ! मैं हूँ भारत का बादशाह। कभी आवश्यकता पड़े तो मेरे पास आना।" यह कहकर वह चला गया। किसान ने उसे मार्ग बता दिया। तब कई वर्ष बीत गए। एक बार वर्षा नहीं हुई। किसान का खेत सूख गया। उसने सोचा—'बादशाह के पास चलता हूँ, उससे कुछ मदद माँगूंगा।' चला वह अपने गाँव से। पहुँचा राजधानी में। देखा—बादशाह की सवारी जा रही है। बहुत बड़ा लाव-लश्कर उसके साथ है। बादशाह हाथी पर बैठा है। किसान ने देखते ही आवाज़ दी, "अकबरा !···ओ अकबरा !" सुननेवाले आश्चर्यचकित हुए—यह कौन असभ्य है ? किसी ने कहा, "इसका सिर काट दो, यह असभ्य है।" अकबर ने भी इस आवाज़ को सुना। दूर से उसको देखा तो पहचान लिया, उसे अपने पास बुलाया। हाथी पर अपने पास बैठा लिया। महल में पहुँचा तो नौकरों को आज्ञा दी कि यह मेरे ही कमरे में सोयेगा ; इसने मेरी जान बचाई थी; मेरे कमरे में इसके लिए पलँग लगा दो। रात को अपने साथ ही उसको खाना खिलाया। उसके सो जाने पर सोया। प्रातःकाल किसान उठा तो देखा

कि बादशाह एक कपड़ा बिछाकर उसपर बैठे हैं, घुटने टेककर, हाथ फैलाकर ; पता नहीं किससे क्या माँग रहे हैं। बादशाह नमाज़ पढ़ रहा था। निवृत्त हुआ तो किसान ने पूछा, "यह तुम क्या करते थे ?" बादशाह ने कहा, "आशीर्वाद माँगता था।" किसान ने पूछा, "किससे ?" बादशाह ने कहा, "भगवान् से।" किसान ने कहा, "अच्छा" और अपनी लाठी उठाकर चल पड़ा। बादशाह ने कहा, "अरे, तुम जाते कहाँ हो ? यह बताओ कि तुम आये किसलिए थे ?" किसान ने कहा, "बादशाह ! मैं आया था तुमसे मदद माँगने, परन्तु यहाँ आकर देखा कि तुम भी माँगते हो। उसी से मैं भी माँग लूँगा। तुम स्वयं भिखारी हो, तुमसे क्या माँगूँगा मैं !"

ऐसा अटल विश्वास जिसके हृदय में है, वही परमात्मा की उपासना का अधिकारी है।

यम और नचिकेता की कथा तो आपने सुनी है। यम ने अपने घर में आये मेहमान से तीन वर माँगने के लिए कहा। नचिकेता ने दो वर माँग लिये। अपने लिए नहीं, अपितु दूसरों के लिए। यम ने कहा—"कुछ अपने लिए भी तो माँग !" नचिकेता ने कहा, "मेरे लिए ही वर देना चाहते हो तो बताओ कि वह क्या है जिसे ईश्वर कहते हैं ?" यम ने कहा, "यह न पूछ; कोई और वस्तु माँग ले ! मैं तुझे बेअन्त धन और दौलत दे सकता हूँ, सुन्दर स्त्रियाँ दे सकता हूँ, भोग-विलास के सामान दे सकता हूँ।" आजकल का कोई नवयुवक होता तो शायद कहता, 'ला यही दे दे।" परन्तु नचिकेता ने कहा, "नहीं, यह सब-कुछ मुझे नहीं चाहिए, यह सब-कुछ नाश होनेवाला है। मुझे वह दे जो कभी नाश नहीं होता। अन्त में मरना है मुझे। मरने के पश्चात् तेरे पंजे में न फँसूँ, वह मार्ग बता मुझे।" यम जब किसी भी उपाय से नचिकेता को मना नहीं सका, जब किसी भी रीति से उसके हठ को दूर

नहीं कर सका तो बोला—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति,
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।

'सब वेद जिस महान् पद का वर्णन करते हैं, सब तपस्वी जिसकी बात कहते हैं, जिसकी इच्छा से ब्रह्मचारी अपने व्रत को धारण करते हैं, उसे संक्षेप में तेरे सामने कहता हूँ। ओ३म् है वह।'

आगे चलकर फिर उसने कहा—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म ह्येतद्ध्येवाक्षरं परम् ॥
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

'वास्तव में यही वह अक्षर है, जो ब्रह्म है, निश्चित रूप से यही अक्षर परम ब्रह्म है। इसको जानकर जाननेवाला सब-कुछ पाता है जिसकी वह इच्छा करता है।' इससे भी आगे चलकर उसने कहा—

एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

कठ० १।२।१७॥

'इसका आसरा सबसे बड़ा है। इसका आसरा सबसे ऊपर है। इसका आसरा लेकर आसरा लेनेवाला ब्रह्मलोक में आनन्द और महिमा प्राप्त करता है।'

दुनिया में हमें बहुत सारे सहारे दिखाई देते हैं, परन्तु ये सब सहारे जानेवाले हैं। फिर इनमें से मनुष्य किसका सहारा ले? क्या धन और दौलत का? हमने देखा—धन और धान्य रहता नहीं, चला जाता है; या जब मनुष्य चला जाता है, धन-धान्य इसके साथ नहीं जाता। तब क्या कपड़ों और मकान का सहारा लें? ये भी तो रहते नहीं। कपड़े फट जाते हैं, मकान टूट जाते हैं; कई बार वे सब खड़े रहते हैं, जानेवाला चला जाता है। तब क्या पति-पत्नी, पुत्र और

सम्बन्धियों का सहारा लें ? वे भी नहीं रहते । वे स्वयं अपने लिए सहारा ढूँढते-फिरते हैं ! तब क्या मोटर और गाड़ियों का, जहाज़ों और सवारियों का सहारा लें ? वे भी नहीं रहते । शरीर नहीं रहता, स्वास्थ्य नहीं रहता, कुछ भी तो नहीं रहता, यह सब नष्ट होनेवाला है । तब किसका सहारा लें ? किसको अपनाया जाए ?

किस सँग कीजे मित्रता, सब जग चालनहार ।
निश्चय केवल है प्रभु, उससे कर लो प्यार ।।

प्रभु ही सदा साथ देता है, एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ता । और वह है ओ३म् । मुण्डक उपनिषद् के दूसरे मुडण्क का दूसरे खण्ड का छठा मन्त्र है—

ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति
च पाराय तमसः परस्तात् ।।

'इस आत्मा का ध्यान ओ३म् के रूप में करो । तब तुम्हारा कल्याण होगा । घने-से-घने अँधेरे को दूर करने का यही एक साधन है । इस साधन को अपनाओ । तुम्हारा कल्याण होगा । अन्धकार टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा । अनन्त ज्योति जाग उठेगी ।' यह बात केवल मुण्डक उपनिषद् ही नहीं कहती, सभी उपनिषद् कहती हैं । छान्दोग्य उपनिषद् में, माण्डूक्य उपनिषद् में और कितने ही दूसरे शास्त्रों में ओ३म् की महिमा का वर्णन है ।

कई सज्जन कहते हैं, 'ओ३म्' की महिमा तो हमने समझ ली; इसका ध्यान करने से कल्याण होता है, यह भी जान लिया ; परन्तु ध्यान कैसे करें ? आज यह बताऊँगा । ध्यान से सुनिये ! सूक्ष्म बात है यह । ध्यान से सुनोगे तो आपको पता लगेगा कि ओ३म् के द्वारा ध्यान किस प्रकार लगाया जाता है ।

ओ३म् का जाप हृदय से करना चाहिए । मानव-शरीर

में हृदय इस प्रकार है जिस प्रकार इस दुनिया में सूर्य। दोनों से नीली, पीली, हरी, लाल किरणें निकलती हैं। दोनों का आपस में सम्बन्ध है। दुनिया में सूर्य न रहे तो दुनिया मर जाती है। मनुष्य का हृदय धड़कना बन्द हो जाए तो इन्सान समाप्त हो जाता है। दोनों से निकलनेवाली सूक्ष्म किरणें एक-दूसरी से मिलती हैं। किरणों की एक सड़क तैयार हो जाती है। सूर्य का ध्यान करके ओ३म् का जाप करनेवाला जब शरीर के सूर्य इस हृदय में ओ३म् कहता है, तो इस सड़क से होकर वह आगे बढ़ता है—क्षणभर में, क्षण के करोड़वें हिस्से में सूर्य के अन्दर पहुँच जाता है। मरते समय जब वह इस प्रकार से ओ३म् कहता है तो सूर्य की रोशनी इसे गोद में ले लेती है। सूर्य लोक इसका हो जाता है।

हमारी तो सारी संस्कृति ही सूर्य से ओतप्रोत है। प्राचीनकाल में हम अपना ध्वज बनाते थे तो लाल रंग का इसमें सूर्य बनाते थे। सूर्य में ओ३म् लिख देते थे। गुरु के पास जब शिष्य पहुँचता तो सबसे पहले गुरु शिष्य से कहता—

माणवक ! सूर्यस्यावृतमनुवर्तस्व।

सा० ब्रा० १।६।१६॥

अर्थात् 'तेरी शिक्षा और जीवन का आदर्श सूर्य है।'

और शिष्य यजुर्वेद के दूसरे अध्याय के २६वें मन्त्र का यह प्रतीक पढ़ता—

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते।

'मैं सूर्य का अनुकरण करूँगा।' स्वस्तिवाचन में यह मन्त्र पढ़ा जाता है—

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।

'सूर्य और चाँद की भाँति मैं कल्याण के मार्ग पर चलूँगा।' परन्तु सूर्य में ऐसा कौन-सा गुण है जिसके कारण इतना महत्त्व इसको दिया गया है? सूर्य का एक अर्थ प्राण भी है,

और प्राण का एक अर्थ सूर्य भी। सूर्य इस दुनिया को प्राण देता है, इसमें रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को ज्योति देता है। यह इसका पहला गुण है। परन्तु वह रोशनी देता है तो किसी से उधार लेकर नहीं, अपितु इसलिए कि उसके अपने अन्दर प्रकाश है। वह स्वयं ही रोशन है, इसलिए आर्यों ने इसे अपना निशान बनाया। वे स्वयं प्रकाशमान थे। दूसरों को प्रकाश देना चाहते थे। जो स्वयं नहीं जलते, वे दूसरों के दुःख को जला नहीं सकते। जो स्वयं प्रकाशित नहीं हैं, वे दूसरों को प्रकाशित नहीं कर सकते। सूर्य का दूसरा गुण यह है कि वह गर्मी देता है। पानी में, लोहे में, मिट्टी में, पत्थर में, आपके कपड़ों में, आपके शरीर में, हर जगह आग है। शरीर की अग्नि ठंडी हो जाए तो लोग कहते हैं, "ले चलो, इसे मरघट में पहुँचा दो, यह ठण्डा हो गया है।" पेट की आग बुझ जाए तो वैद्य कहता है, "अब इसका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा।" हर स्थान पर अग्नि आवश्यक है। अग्नि जीवन है। हवन-कुण्ड में हम आहुति देते हैं तो उस समय, जब अग्नि प्रज्वलित हो जाए। पुकारकर हम कहते हैं—

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थेऽध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत॥

'उठो जागो हे अग्निदेव ! जागो, हमारी इच्छाओं को पूरा करने के लिए, वह दशा उत्पन्न करने के लिए जिसमें विश्वभर के देवता हमारी भेंट को स्वीकार कर लें, हमारी भेंट को पाकर प्रसन्न हो जाएँ।'

यह अग्नि बहुत आवश्यक है। इसके बिना कोई कार्य नहीं होता। पेट के अन्दर डाला हुआ भोजन भी उस समय पचता है जब आग जल रही हो। पेट की अग्नि के सम्बन्ध में एक बात मैं आपको बताता हूँ। बार-बार मैं कहता हूँ कि भोजन तब खाओ जब पेट की अग्नि जल रही हो। कई भाई

पूछते हैं कि पेट की आग को देखें किस प्रकार ? कोई खिड़की तो लगी नहीं कि इसको खोलकर देख लें और जान लें अन्दर जलती है कि नहीं। परन्तु देखो, इस अग्नि को देखना कठिन नहीं, बहुत सरल है। नाक में दो छिद्र हैं न ? दायें छिद्र से श्वास चलता हो तो समझ लो आग जलती है, बायें से चलता हो तो समझो कि अग्नि नहीं जल रही है। खाना उस समय खाओ जब दायें छिद्र से श्वास चलता हो, नहीं तो नहीं खाओ; वह भोजन पचेगा नहीं, विष बन जायेगा। आप कहेंगे—"वाह आनन्द स्वामी ! यह अच्छा उपाय बता दिया तूने। दफ्तर या दुकान का समय हो गया, खाने की थाली सामने आ गई। अब दायाँ श्वास नहीं चलता तो क्या भूखे ही उठकर चले जायें और दफ्तर या दुकान में दिन-भर भूखे ही बैठे रहें ?" देखो, ऐसा करने के लिए मैं नहीं कहता। आपको भूखा मारना मुझे स्वीकार नहीं। मैं वह विधि बताता हूँ जिससे पेट की अग्नि जलाई जा सकती है। हमारे ऋषियों ने हर बात में कमाल किया है। इस विषय में भी किया है। मैंने इस विधि को सीखा बहुत कष्ट से। ऋषिकेश से आगे बढ़कर गरुड़ चट्टी के निकट एक पहाड़ पर मेरे गुरु रहते थे जिनसे मैंने हठयोग की क्रियाएँ सीखीं। उन्होंने मुझे २१ दिन भूखा मारा, तब यह विधि बताई। आज्ञा दी कि एक सप्ताह केवल तीन गिलास पानी प्रतिदिन पियो। जिस किसी प्रकार निर्वाह कर लिया मैंने। पानी के केवल तीन गिलास ही पीता रहा और कुछ खाया-पिया नहीं। एक सप्ताह व्यतीत हुआ तो उन्होंने कहा—अब केवल दो गिलास ही पियो। मैं घबराया। पंजाब का गिलास नहीं था, वह यू० पी० का गिलास था, छोटा-सा। अट्ठारहवें दिन मुझसे हिला नहीं जाता था। हुलिया बदल गया था। शीशे में देखा, खुशहालचन्द खुशहालचन्द प्रतीत नहीं होता था। कोई निहालचन्द कमालचन्द-सा प्रतीत होता

था। मद्रास का शरीर था मेरे गुरुजी का। गरुड़ चट्टी के ऊपर उनकी कुटिया के निकट ही मेरी कुटिया थी। अपनी कुटिया में नाड़ी पर हाथ रखे मैं बैठा था; तभी गुरु महाराज कुटिया में आए। मुझे नाड़ी पर हाथ रखे देखकर बोले, "क्या करता है?" मैंने कहा, "देखता हूँ नब्ज़ चलती है या नहीं।" वे बोले, "इसकी चिन्ता नहीं करो। मेरे रहते तू मरेगा नहीं, मैं तुझे मरने नहीं दूँगा।" इस प्रकार २१ दिन के कठिन तप के पश्चात् जो भेद मैंने सीखा, वह मैं आपको बिना किसी तप के, बिना शुल्क बताये देता हूँ। देखिये यह हाथ है न! इसकी मुट्ठी बाँधकर दूसरी बग़ल में दबाइये। जिस बग़ल में दबाया है, उस ओर जितना झुक सकते हैं, झुक जाइये। थोड़ी देर ऐसा किये रहने से जिस हाथ की मुट्ठी को बग़ल में दबाया है, उस ओर की नासिका चलने लगेगी। दाईं ओर के श्वास को सूर्य-स्वर कहते हैं, बाईं ओर के श्वास को चन्द्र-स्वर। जब सूर्य-स्वर चलने लगे तब भोजन कीजिये। वह पचेगा, रोग नहीं करेगा।

परन्तु यह बात तो बीच में वैसे आ गई, मैं कह रहा था यह कि सूर्य का दूसरा गुण अग्नि है। ओ३म् के उपासक को अपने अन्दर अग्नि पैदा करनी चाहिए। इस अग्नि के बिना कोई कार्य चलता नहीं। पेट में एक आग है, जिसे जठराग्नि कहते हैं। नाभि के अन्दर एक आग है जिसे वैश्वानर अग्नि कहते हैं। यह अग्नि शरीर का पॉवरहाउस है। हमारे शरीर में जितनी बिजली है, वह सब यहाँ से आती है। यह बिजली न रहे तो श्वास बन्द हो जाता है। इस अग्नि से ठीक प्रकार से कार्य लेकर सूर्य को एक आदर्श बनानेवाले उपासक का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह दूसरों को भी आग दे। दूसरों को भी आगे ले जाए। जो लोग निराश होकर बैठ गए हैं, उन्हें कहे कि घबराओ नहीं, आओ मैं तुम्हें आगे ले चलूँगा।

सूर्य का तीसरा अंश है—पवित्रता। इसकी किरणें कीचड़ के अन्दर भी पहुँचती हैं, कूड़े और करकट के ढेरों के अन्दर भी, सभी जगह पहुँचती हैं, सबको शुद्ध करती हैं परन्तु स्वयं कभी अपवित्र नहीं होतीं। ओ३म् के उपासक को भी अपने अन्दर यह गुण लाने का प्रयत्न करना चाहिए। आप कहेंगे कि यह तो बहुत कठिन है। मैं मानता हूँ कि कठिन है, परन्तु कठिन बात को करने में ही तो वीरता है। साधारणतया जब हम बुराई और गन्दगी के निकट जाते हैं, तो इससे हमपर बुरा प्रभाव ही पड़ता है। जब हम गन्दे गीत सुनते हैं, गन्दे नाच देखते हैं, गन्दे दृश्य देखते हैं, तो इसका प्रभाव मन पर अवश्य होता है। हमें प्रयत्न करना चाहिए कि बुराई का प्रभाव हमपर न हो। हम बुराई को दूर कर दें। मैं यह नहीं कहता कि बुराई से भरे इस संसार को छोड़कर जंगलों में चले जाओ। जो लोग जंगलों में रहते हैं, दुनियादारी को छोड़ गये हैं उनको भी मैंने देखा है। उनके अन्दर भी कभी-कभी बुराई जाग उठती है। यदि वे यत्न न करें तो बहुत भयंकर रूप धारण कर लेती है। संन्यास लेने के पश्चात् जब मैं उत्तर काशी में पहुँचा तो नीली ठंडी गंगा को देखकर मन शान्त हो गया। मैं जा रहा था गंगोत्री को, कुछ दिन के लिए उत्तर काशी में ठहर गया। गंगा पर कुछ महात्मा रहते थे, उनके पास भी गया। उनके दर्शन भी किये। एक कुटिया में बैठा था तो पूछा, "पासवाली कुटिया में कौन रहता है?" एक सज्जन ने बताया, "क्रोधी बाबा।" मैंने आश्चर्य से कहा, "उत्तर काशी के महात्माओं में भी क्या क्रोध हो सकता है?" वे बोले, "क्रोध देखना चाहते हो तो उनसे जाकर आग माँगना।" मैं गया। देखा—कुटिया के बाहर एक महात्मा बैठे हैं, धूनी रमा रक्खी है उन्होंने। उनसे बातें करता रहा, कोई क्रोध प्रतीत नहीं हुआ।

चलते समय मैंने कहा, "बाबा, थोड़ी-सी आग तो दे दीजिये।" वे बोले, "नहीं-नहीं, आग नहीं है, चला जा यहाँ से।" मैंने उठते हुए कहा, "बाबा! आग तो दिखाई देती है।" वे चिल्लाकर बोले, "जाता है कि नहीं? चला जा यहाँ से।" मैंने कहा, "आग तो बहुत है, बहुत तेज़ी से जल रही है, आप कैसे कहते हैं कि आग नहीं है?" वह मोटी-मोटी गालियाँ देने लगे। मैंने काफ़ी परे आकर कहा, "बाबा! अब तो आग में ज्वालाएँ भी उठने लगीं, तुम क्यों कहते हो कि आग नहीं है?" परन्तु इससे पूर्व कि वह अपना चिमटा उठाकर मेरी ओर भागते, मैं उनकी गालियाँ सुनता हुआ चला आया। सो ऐसी बात नहीं कि जो लोग जंगलों में चले गये हैं उन्होंने सब बुराइयों को छोड़ दिया है, वे बिल्कुल पवित्र हो गये हैं। पवित्र लोग यहाँ भी बसते हैं—इस शहर में, इस करौलबाग में; इन सड़कों के ऊपर, मकानों के अन्दर रहनेवाले भी पवित्र हो सकते हैं। और सच्ची बात यह है कि शहरों में रहते हुए पवित्र रहना ही वीरता है। यह शहर परीक्षा-स्थान है। बार-बार परीक्षा होती है। यहाँ पर कमल के समान रहना पड़ता है; दुनिया के अन्दर, परन्तु दुनिया से थोड़ा ऊपर उठकर। यही कहना पड़ता है—

दुनिया में हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ।
बाज़ार से गुज़रा हूँ ख़रीदार नहीं हूँ॥

अर्थात् अग्नि और सूर्य की भाँति अपवित्रता को नष्ट करते हुए स्वयं पवित्र रहना पड़ता है।

सूर्य का चौथा गुण है कि वह अपने नियम में कभी ढील नहीं होने देता, लापरवाही नहीं आने देता, वह कभी छुट्टी नहीं माँगता। दो अरब वर्ष हो गये इस पृथिवी को बने हुए, क्या कभी सूर्य ने छुट्टी माँगी है? क्या कभी इसे मलेरिया हुआ है? ज़ुकाम हुआ है? थकावट हुई है? यदि कभी एक

घण्टे के लिए भी सूर्य छुट्टी ले ले तो दुनिया की छुट्टी हो जाये। वह समय का इतना दृढ़ है, वह अपनी ड्यूटी पर इतना स्थिर है कि लोग उसे देखकर अपनी घड़ियाँ मिलाते हैं। सूर्य की रोशनी से समय बतानेवाली घड़ियाँ बनाते हैं वे। नई दिल्ली के जन्तर-मन्तर में आज भी एक ऐसी ही घड़ी बनी हुई है। यह है सूर्य का नियम-पालन। परन्तु आजकल तो जैसे नियम-पालन भी कष्टसाध्य बन गया है। ये नौजवान लड़के और लड़कियाँ स्कूल और कॉलिज में जाना हो तो किसी-न-किसी प्रकार स्कूल या कॉलिज जाने के समय से थोड़ी देर पहले उठ जाते हैं। स्कूल और कॉलिज न जाना हो तो दस बजे से पूर्व उठने का नाम नहीं लेते। उस समय इन्हें उठाओ तो कहते हैं, "सोने दो, आज छुट्टी है।" यह नियम-पालन नहीं। ग़लत बात है यह। जीवन का एक नियम बनाओ। इसको बदलो नहीं। इसी पर चलते चले जाओ, तभी तुम्हारे अन्दर सूर्य का गुण आयेगा। तभी तुम ओ३म् की उपासना कर सकोगे।

सूर्य का पाँचवाँ गुण है कि वह हानिकारक कृमियों को मार देता है, समाप्त कर देता है। अँधेरे में कृमि बढ़ते हैं, पैदा होते हैं, फैलते हैं, भाँति-भाँति की बीमारियाँ उभारते हैं। सूर्य की रोशनी में आते ही मर जाते हैं। ओ३म् के उपासक को भी यह सब-कुछ करना पड़ता है। ओ३म् की भक्ति करनेवाले में एक महान् शक्ति जाग उठती है। उसका कर्त्तव्य है कि इस शक्ति को पाप-अत्याचार के कृमियों को समाप्त करने के लिए प्रयोग करे। टेढ़ी चालवाले बिच्छू को, विष से भरे रेंगनेवाले साँप को देखकर कहे, "मैं तुम्हें कुचल दूंगा।" स्वयं निश्चय करे कि मैं स्वयं साँप नहीं बनूंगा, किसी दूसरे को बनने नहीं दूंगा; स्वयं पाप के मार्ग पर नहीं जाऊँगा, दसरे को जाने नहीं दूंगा।" ये हैं सूर्य के गुण। ये गुण ओ३म्

के उपासक में होने चाहिएँ। इसलिए गुरु ने कहा—"हे माणवक! सूर्य को अपना आदर्श बना!" इसीलिए हमारे पूर्वजों ने सूर्य को अपना चिह्न बनाया।

आप कहेंगे—"इन सब बातों का ओ३म् की उपासना से क्या सम्बन्ध है?"

सुनिये! ओ३...म्—ऐसा हम कहते हैं। ऐसे हम जाप करते हैं। साँस अन्दर जाये तो हृदय में "ओ" कहना चाहिए, जब साँस बाहर आये तो "म्" कहना चाहिए और ठीक उस समय अनुभव करना चाहिये कि हृदय के अन्दर सूर्य चमक उठा है; हम इसमें प्रविष्ट हो रहे हैं। परन्तु यह सब-कुछ होगा उस समय जब आप सूर्य के गुणों को समझते हों, उन्हें अपनाने का यत्न कर रहे हों। इन गुणों को धारण करनेवाला जब ओ३म् कहता है, जब बार-बार संकल्प से उसकी धारणा दृढ़ हो जाती है, तो ओ३म् कहने के साथ ही उसके अन्दर सूर्य चमक उठता है। बार-बार ऐसा करते-करते अन्तिम श्वास के साथ जब वह ओ३म् कहता है तो उसका सूक्ष्म शरीर सीधा सूर्य-लोक में पहुँचता है। परन्तु अन्तिम समय में अन्तिम श्वास के साथ ऐसी बात करेगा कौन? जिसने जीवनभर अभ्यास नहीं किया, वह तो कर नहीं सकता। जीवनभर जो करते रहे हो, वही अन्तिम समय में याद आयेगा। इसलिए जैसे भी हो, चाहे तुम अमीर हो या निर्धन, सुखी हो या दुःखी, छोटे हो या बड़े, ओ३म् का जाप करो और विधि से करो, जो मैंने बताई है।

लखनऊ के एक सज्जन ने बताया कि उनके शहर के एक वकील साहब मरने लगे तो लोगों ने कहा, "वकील साहब! अन्तिम समय आ गया है, गीता सुनो!" वकील साहब चिढ़कर बोले, "अन्तिम समय आ गया है, तो पहले मुझसे स्वीकारपत्र लिखवा लो, स्टाम्प लिखवा लो, फिर गीता सुनने

में बेकार दक्षिणा भी देनी पड़ेगी, स्टाम्प तो तुम्हारे काम आयेगा।" ऐसे आदमी को अन्तिम समय में ओ३म् कैसे याद आयेगा? ओ३म् तो उसको याद आता है जिसने जीवनभर इसका अभ्यास किया हो और ठीक विधि से किया हो।

मुझे कहना था वास्तव में गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में। इसका पहला अक्षर ओ३म् है। इसपर मैंने अधिक बल दिया तो इसलिए कि ओ३म् का जाप करना सरल है, प्रत्येक व्यक्ति इसका जाप कर सकता है। बहुत बड़ी महिमा है इसकी। तन्त्र-ग्रन्थों का कार्य भी ओ३म् के बिना नहीं चलता। यह मन्त्रों का सार है, ज्ञान का केन्द्र है। यह सब इच्छाओं को पूरा करनेवाला है। इसके द्वारा सब-कुछ मिलता है।

कल से 'भूर्भुवः स्वः' इन तीन शब्दों का वर्णन करूँगा। बताऊँगा कि प्रजापति ने किस प्रकार वेद का यह रस निकाला; तीनों नदियों को एक स्थान पर जमा कर दिया। अब समय हो गया है न, इसलिए

ओ३म् तत् सत्!

पाँचवाँ दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो!

ओ३म् शब्द की व्याख्या हो चुकी। गायत्री मन्त्र में इससे आगे है भूर्भुवः स्वः। इन तीनों को व्याहृतियाँ भी कहते हैं। वेद का एक नाम 'त्रयी विद्या' भी है। तीन प्रकार की विद्या का उसमें वर्णन है—ज्ञान, कर्म और उपासना। इन तीन विद्याओं को प्रजापति ने निचोड़ा; सार निकालने के लिए दबाया उन्हें। रस के तीन बिन्दु उससे उत्पन्न हुए। ये तीन बिन्दु हैं—भूः। भुवः। स्वः।

इन तीनों के वैसे तो बहुत-से अर्थ हैं, परन्तु मोटे रूप से भूः का अर्थ है प्राण और यह पृथिवी लोक। भुवः का अर्थ है रक्षा करनेवाला और यह अनन्त सूर्य, तारों और चाँदों से भरा हुआ आकाश। स्वः का अर्थ है सुखों को देनेवाला, और वह सब-कुछ जो आकाश से ऊपर और परे है। इन्हीं तीनों को अस्ति, भवति और प्रीति भी कहते हैं। हिन्दी में आप इन तीनों को 'है, होना और सुख की ओर बढ़ना' कह सकते हैं। अंग्रेज़ी में भी Being, Becoming and Bliss कह सकते हैं। इन्हीं तीनों को एक और प्रकार से 'सत्, चित् और आनन्द' कहा जाता है। मैं जब भूः कहता हूँ तो इस भूमि के कण-कण में फैले हुए प्राणरूप परमदेव परमेश्वर का विचार मेरे हृदय में आना चाहिए। हर वस्तु में प्राण है—पत्थरों में, हवाओं में, बादलों में, फूलों में, पत्तों में, फलों में, सब्ज़ियों में, बिजलियों में, मनुष्यों में, पशुओं में। प्राण के बिना कोई स्थान रिक्त कहाँ है ? यह प्राण ही ईश्वर है। ईश्वर प्रत्येक स्थान पर है—भूः का अक्षर बोलते ही मुझे ऐसा अनुभव होना चाहिए। और फिर भुवः कहते ही यह अनुभव होना चाहिए कि यह प्राणरहित होकर बढ़ रहा है, आगे जा रहा है, हर वस्तु बढ़ रही है, हर वस्तु आगे जा रही है। कहाँ जा रही है वह ? स्वः कहते ही अनुभव करना चाहिए कि सुख की ओर जा रही है।

ईश्वर को हम सविता कहते हैं। सविता का अर्थ है प्रेरणा करनेवाला। इस सविता ने क्या किया ? दुनिया की सब वस्तुओं को बनाकर भूर्भुवः स्वः के मार्ग पर चला दिया। पहले कहा, "भूः—यह है।" परन्तु केवल 'है' से तो काम नहीं बनता, इसलिए उसने कहा, "भुवः—यह होता रहेगा।" परन्तु केवल 'होता रहने' या होने से भी तो काम नहीं बनता। 'है'='होता है' तो काहे के लिए होता है ? इसलिए उसने

कहा, "स्वः—सुख के लिए।" इसलिए कि प्रत्येक वस्तु सुख की ओर, कल्याण की ओर, आनन्द की ओर बढ़ती जाये।

शायद यह बात आपके लिए कठिन हो गई। मैं इसे सरल किये देता हूँ। भूः का अर्थ है 'बीज'। परन्तु बीज यदि सदा बीज के रूप में ही रहे तो इसका लाभ क्या है? बीज की सफलता इस बात में है कि वह वृक्ष बने। भुवः का अर्थ है वृक्ष। रक्षा किया हुआ बीज जब फैलता है तब उसे भुवः कहते हैं। परन्तु वृक्ष यदि वृक्ष ही बना रहे, यदि उसकी छाया न हो, उसके फल न हों, फूल न हों तो वह निरर्थक है। यह छाया, फल और फूल ही 'स्वः' है। ये बीज को नष्ट नहीं होने देते। निरन्तर चलते और फैलते रहते हैं ताकि उनसे सुख और आनन्द बढ़ता जाये। 'बीज, वृक्ष और फल' ये हैं 'भूः, भुवः, स्वः।'

भूः का अर्थ है प्राण। संसार के प्रत्येक स्थान पर प्राण को देखना। प्राण में ईश्वर को देखना, ऐसा प्रयत्न उपासक को करना चाहिए। यूँ अनुभव करना चाहिए कि वह प्राणाधार परमेश्वर की गोद में बैठा है। इसके लिए हर ओर वह ही वह है—प्राण की रक्षा करता हुआ, प्राण को बचाता हुआ। इसके साथ ही उसे सोचना चाहिए कि मैं जो अपने देवता को प्राण-रूप और प्राण की रक्षा करनेवाला कहता हूँ तो क्या मैं भी किसी के प्राण की रक्षा करता हूँ? मेरा कर्त्तव्य भी तो है न कि मैं दूसरों के प्राणों की रक्षा करूँ, उनके प्राणों को छीनूँ नहीं।

भुवः का अर्थ है, दुःखों से बचानेवाला, दुःखों में रक्षा करनेवाला, दुःखों को दूर करनेवाला। जब यह भुवः अक्षर मैं कहूँ तो मुझे अनुभव करना चाहिए कि मेरे दुःख दूर हो रहे हैं, मेरे पास दुःख नहीं आ सकता। ईश्वर की उपस्थिति में दुःख का कोई अस्तित्व नहीं। प्यार से, विश्वास से कहना

चाहिए—"दुःख को दूर कर दे।" यह कहना चाहिए, परन्तु इसके साथ ही यह भी सोचना चाहिए कि क्या मैं भी किसी के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करता हूँ ? यदि मैं दूसरों के लिए दुःख ही पैदा करता हूँ, तो फिर अपने-आप को दुःखों से दूर करने का यत्न क्यों करता हूँ ? ईश्वर को 'दुःखों को दूर करनेवाला' क्यों कहता हूँ ? ईश्वर को यदि मैं कहता हूँ कि 'मेरे दुःख दूर कर दे' तो मेरा भी कर्त्तव्य है कि मैं दूसरों के दुःख दूर करूँ। जिन दुःखों से मुक्ति चाहता हूँ, उन्हें क्या मैंने स्वयं ही तो उत्पन्न नहीं कर लिया ? साधारणतया हम यही करते हैं—स्वयं ही दुःख उत्पन्न करते हैं, फिर भगवान् को पुकारते फिरते हैं, "दुःख को दूर कर दे।" स्वयं अपने-आप-को ज़ंजीरों से जकड़ लेते हैं और फिर ईश्वर को कहते हैं, "ज़ंजीरों से छुड़ा दो मुझे।" कौन छुड़ायेगा ऐसे व्यक्ति को ? जिसने स्वयं ही अपने-आपको बाँध रक्खा है, उसे मुक्ति कौन दिलायेगा ?

सुनो, ऐ दुनियावालो ! अपने लिए दुःखों को उत्पन्न मत करो ! जिन दुःखों से आज तुम दुःखी हो, उनमें ७५ प्रतिशत तुम्हारे अपने उत्पन्न किए हुए दुःख हैं। समाज में, घर में, प्रत्येक स्थान पर मैं यही बात देखता हूँ। दुःखों की इस बहुत बड़ी संख्या को हम स्वयं ही उत्पन्न करते हैं, फिर स्वयं ही चिल्लाते फिरते हैं कि हम दुःखी हो गये।

एक सीधी-सी, सरल-सी बात है कि घर में प्रत्येक वस्तु निश्चित स्थान पर रक्खो, परन्तु इस छोटीसी बात को भूलकर उन घरों में जहाँ वस्तुओं को रखने का स्थान नियत नहीं, क्या होता है, यह मैंने एक बार देखा। प्रातः हुआ। बच्चे को स्कूल जाना है। आज उसकी परीक्षा है। जल्दी से उठा, किसी प्रकार से रो-पीटकर नहाया। पाजामा पहनने लगा तो पाजामे में नाला नहीं। वह चिल्लाया कि नाले के बिना

पाजामा कैसे पहनूँ ? माँ ने कहा, नाला डालनेवाली लकड़ी ले ले, नाला डाल ले। परन्तु वस्तुओं को रखने का कोई नियत स्थान नहीं, वह लकड़ी मिले तो कहाँ से ? दौड़-भाग के थक गये तो आज्ञा हुई कि "अरे, दातुन ले लो, दातुन से नाला डाल लो।" अब दातुन की खोज आरम्भ हुई परन्तु दातुन तो घर में उगती नहीं, कोई स्थान उसके लिए नियत नहीं, मिले तो कहाँ से ? बच्चे के स्कूल जाने का समय हुआ जाता है, देर हुई जाती है। अन्ततः आज्ञा हुई, "अरे, पैंसिल से ही नाला डाल लो, क्या आफ़त मचा रक्खी है !" बच्चे के पास पैंसिल तो है। उसी से नाला डाला गया। नाला पड़ गया पाजामे में, परन्तु पैंसिल का सिक्का टूट गया। बच्चा चिल्लाया कि "अब मैं परीक्षा कैसे दूँगा, मेरी तो ड्राइँग की परीक्षा है, पैंसिल के बिना क्या करूँगा !" उसे चिल्लाता देखकर किसी ने कहा, "अरे भाई, चिल्लाते क्यों हो ? चाकू लेकर पैंसिल घड़ लो।" अब चाकू की खोज शुरू हुई। ढूँढने पर जब वह भी नहीं मिला तो आज्ञा हुई, "चाकू तो मिलता नहीं, पिताजी के हजामत के सामान में से ब्लेड निकालकर उससे पैंसिल घड़ लो।" बच्चे ने निकाला ब्लेड, पैंसिल को घड़ने लगा। ब्लेड था तेज़, अँगुली कट गई, रक्त बहने लगा। शोर मच गया, "टिंचर निकालो !" पति महाशय चिल्लाये जा रहे थे, "जल्दी करो, टिंचर लगाओ, रक्त बहा जाता है !" पत्नी जी इधर-उधर दौड़ती हुई कह रही हैं, "टिंचर तो मैंने सँभालकर रक्खी है आलमारी में, परन्तु अब क्या करूँ, उसकी चाबी नहीं मिलती।"

अरे ओ दुनियावालो ! इस प्रकार तुम अपने लिए दुःख उत्पन्न करते हो।

एक सज्जन के घर में था मैं। रात का समय था, बिजली फेल हो गई। एक-दो मिनट बिजली नहीं आई, तब शोर

मचा कि मोमबत्ती जला लो। मोमबत्ती के लिए कोई स्थान निश्चित हो तब तो मिले, नहीं तो अँधेरे में मिले किस प्रकार? किसी ने कहा, "दियासलाई लाओ, मोमबत्ती तलाश करनी है।" अब दियासलाई ही नहीं मिलती। सौभाग्य से एक सज्जन वहाँ थे, उनकी जेब में दियासलाई थी। उनसे डिबिया लेकर मोमबत्ती की खोज होने लगी। एक, दो, दस, बीस कितनी ही तीलियाँ जल गईं, मोमबत्ती नहीं मिली। तब किसी ने कहा, "अरे भाई, बाज़ार से मोमबत्ती मँगा लो न, पता नहीं घर में है भी या नहीं।" नौकर दौड़ा-दौड़ा गया। मोमबत्ती ले आया। अब देखा तो डिबिया में तीलियाँ ही समाप्त हो गई हैं। नौकर को फिर दौड़ाया गया। डिबिया आई, मोमबत्ती जलाने लगे तो बिजली आ गई। गृहस्वामी थककर कुर्सी पर बैठ गए; लम्बी साँस लेकर बोले, "क्या खाक स्वराज्य मिला है देश को! बार-बार बिजली बन्द हो जाती है।"

अब इन सज्जन को वह स्वराज्य ही बुरा प्रतीत होने लगा जिसके लिए देश के हज़ारों मनुष्यों ने इतने बड़े-बड़े बलिदान दिए। स्वराज्य को गालियाँ देते हैं वे। यह नहीं सोचते कि घर में कोई वस्तु ठिकाने से भी रखनी चाहिए। इन दुःखों को कौन पैदा करता है? निश्चितरूप से हम स्वयं पैदा करते हैं; पैदा करके हम स्वयं ही चिल्लाते हैं, शिकायत करते हैं।

इसी प्रकार कड़वा बोलने से भी दुःख होता है। कई लोग तो कड़वा बोलने और गालियाँ देने को अपना स्वभाव बना लेते हैं। एक बार लाहौर के अनारकली बाज़ार में भल्ला जी की दुकान में मैं खड़ा था। बाज़ार में दो व्यक्तियों में झगड़ा हो गया। एक आदमी ने साधारण-सी गाली दे दी, दूसरा व्यक्ति उलझ पड़ा। बात अदालत तक पहुँची। मजिस्ट्रेट ने गाली देनेवाले से पूछा, "तुमने इस आदमी को गाली क्यों

दी ?" गाली देनेवाले ने तीन-चार मोटी-मोटी गालियाँ देकर कहा, "कौन कहता है मैंने गाली दी ? मैं गाली देता ही नहीं।" मजिस्ट्रेट ने मुस्कराकर कहा, "मैं समझ गया साहब ! अब किसी की गवाही की आवश्यकता नहीं।"

कई लोग कड़वा बोलने, निन्दा और चुगली करने का स्वभाव बना लेते हैं। ये माताएँ हैं न ? इन्हें बहुत आनन्द आता है दूसरे घर में जाकर अपने घर की बातें कहने में। इन्हें यह पता नहीं लगता कि दूसरों से कहने पर दुःख कम नहीं होता। लोग दुःख को बाँट नहीं लेते, केवल दिल-ही-दिल में हँसते हैं—

'तुलसी' पर घर जायके, दुःख न कहिये रोय।
लोक-हँसाई होत है, बाँट सकै नहीं कोय॥

परन्तु तुलसी जी तो चले गए, इन माताओं को इससे क्या ! ये पहुँचतीं हैं दूसरे घर में, बखान आरम्भ करती हैं अपने घर का—मेरी बहू ऐसी है, मेरी सास ऐसी है, मेरी ननद ऐसी है, मेरी जिठानी ऐसी है। हर बात मिर्च-मसाले लगकर, बड़ी होकर, फैलकर वापस घर में पहुँचती है। वहाँ महाभारत शुरू हो जाता है। अब इस महाभारत को कौन पैदा करता है ? इस दुःख को बढ़ाता कौन है ? क्या मैं ऐसा करता हूँ ?

स्वयं ही हम दुःख पैदा करें, स्वयं ही चिल्लाते फिरें, यह तो ठीक नहीं।

ऐसे और भी कितने ही दुःख हम स्वयं ही उत्पन्न करते हैं। समाज के अन्दर ऐसे रस्म और रीतियाँ हमने आरम्भ कर रक्खी हैं, जिनसे दुःख के अतिरिक्त सुख कभी हो नहीं सकता। सबसे बड़ा दुःख तो यह है कि लड़कियों के लिए लड़के नहीं मिलते। लड़कियों के लिए यह रोग हमने पैदा नहीं किया तो किसने किया है ? हर व्यक्ति चाहता है कि

मेरी लड़की का विवाह गवर्नर से हो जाये। अब गवर्नर तो प्रान्त में एक होता है। एक लड़की की शादी हो जायेगी उससे। बाकी लड़कियाँ क्या करेंगी? गृहस्थ-आश्रम को ऋषियों ने सबसे ऊँचा और महान् कहा था। आज वही गृहस्थ-आश्रम नरकधाम बन गया है। क्यों? इसलिए कि ऐसे लोग गृहस्थी बनने का प्रयत्न करते हैं, जिन्हें गृहस्थी बनने का वास्तव में कोई अधिकार नहीं। बहुत बड़े उत्तर-दायित्व की बात है यह। बहुत बड़ी योग्यता इसके लिए होनी चाहिए। मकान का नक्शा बनवाना हो तो हम अच्छे इंजी-नियर और नक्शा बनानेवाले को ढूँढते हैं। ऑपरेशन कराना हो तो सर्जन को ढूँढते हैं। हर आदमी को तो हम सर्जन का कार्य नहीं सौंप देते। हर व्यक्ति को सर्जन की छुरी दे दी जाये, हर व्यक्ति यदि छुरी चलाने लगे, तो तीन-चार मास में दिल्ली की बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या हल हो जाये। अच्छे हो जायें सब लोग। जान ही बाकी न रहे। नक्शा बनवाने के लिए, ऑपरेशन करवाने के लिए हम योग्य आदमी को ढूँढते हैं और उससे बड़े और सबसे ऊँचे आश्रम में प्रविष्ट होने के लिए कोई योग्यता नहीं। ऐसी दशा में गृहस्थ-आश्रम नरकधाम नहीं बनेगा तो और क्या होगा?

ऋग्वेद के मण्डल १०, सूक्त ८५, मन्त्र ४४ में लिखा है कि चार गुण हों तो गृहस्थ-आश्रम में प्रविष्ट होना चाहिए; न हों तो नहीं होना चाहिए। पहला गुण है—शरीर का स्वस्थ और शक्तिशाली होना, शरीर में शक्ति का होना। जो लोग मरियलटट्टू हैं, उनके लिए गृहस्थ-आश्रम में कोई जगह नहीं। दूसरा गुण है—विशाल हृदयवाला होना। तीसरा गुण है—अच्छी मेधावाला होना। चौथा गुण है—हमेशा प्रसन्न रहना। ये चार गुण जिनके अन्दर हों केवल उन्हीं को गृहस्थी बनने का अधिकार है। ऐसे लोगों को नहीं, जिनके मस्तिष्क का

पारा ज़रा-ज़रा-सी बात पर १०६ डिग्री तक पहुँचता हो, जो हर समय मुँह बिसूरे रहते हों, जो हर बात को केवल स्वार्थ के दृष्टिकोण से देखते हों। किसी भी व्यक्ति को जो गृहस्थ में प्रविष्ट होना चाहता है, देखना चाहिए कि ये चार गुण उसके ग्रन्दर हैं या नहीं ? जो लोग इन गुणों के देखे बिना विवाह करा बैठे हैं, उन्हें चाहिए कि ग्रपने हृदयों को टटोलें। यदि उनके ग्रन्दर भी ये गुण नहीं हैं तो उन्हें पैदा करने का यत्न करें। गृहस्थ में एक साथी के ग्रन्दर भी ये गुण हों तो गृहस्थ चलता है। दोनों में न हों तो फिर 'बाबा भी गर्म, बाबा के चने भी गर्म' वाली बात होती है। गृहस्थ-ग्राश्रम सुखी नहीं बनता। जो दुःख हमने स्वयं ही उत्पन्न किये हैं, उन्हें दूर करने का यत्न भी हमें स्वयं करना चाहिए। हाँ, जिन दुःखों को दूर करने में हम सफल न हों, उनके लिए ईश्वर की सहायता माँगनी चाहिए ग्रवश्य। ऐसी सहायता मिलती है। ईश्वर की कृपा से दुःख दूर होते हैं। वह दुःखों का नाश करने-वाला है। ग्रपने देश के ग्रन्दर हमने एक पाप किया, उसका फल हमें भोगना पड़ा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ग्रौर शूद्र का विभाजन कोई जात-पाँत का विभाजन नहीं था, केवल समाज के कार्यों का विभाजन था। उसे हमने जात-पाँत का ग्राधार बना दिया, ऊँच-नीच को ग्रारम्भ कर दिया। छुग्राछूत को शुरू कर दिया। ग़लत बात थी यह। ग़लत परिणाम हुग्रा इसका। काम-विभाजन से कोई ऊंचा नहीं होता, कोई नीच नहीं बनता। मेरे शरीर में ये पाँव हैं न ? शूद्र का कार्य करते हैं ये। कैलास की यात्रा में पिस्सुलेक घाटी में मैं पाँव से फिसल गया, घायल हो गया। डेढ़ मील तक मैं इस घायल पाँव के साथ ही चलता रहा। मेरा पाँव घायल हो गया, क्या इसीलिए इसे काटकर फेंक देता ? काटकर फेंका नहीं मैंने। इसे ग्रछूत नहीं बनाया। मैं इसका मूल्य जानता था। हर ग्रंग का ग्रपना

मूल्य है—सिर का, भुजाओं का, पेट का, पाँव का—हर वस्तु आवश्यक है। कोई छूत या अछूत नहीं, कोई ऊँच या नीच नहीं। इस बेकार के अभिमान ने ऐसी दशा उत्पन्न कर दी है कि आज सब-कुछ गड़बड़ हो गया है। न ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय; शूद्र भी नहीं रहे, सब लोग वैश्य बन गये हैं, वे भी लँगड़े। वैश्य का कार्य है धन कमाना, परन्तु अपने पास नहीं रखना, अपितु दूसरों के भले के लिए खर्च कर देना। वेद भगवान् स्पष्ट शब्दों में कहता है—

"ओ कमानेवाले, सुन! अकेले नहीं खाना। तेरी इस कमाई पर केवल तेरा ही अधिकार नहीं, सारे समाज का अधिकार है। इस देश के अन्न, पानी, मिट्टी से बना है तेरा धन, सारे देश का अधिकार है इसपर..."

यह थी वेद की आज्ञा। परन्तु जब यह अवस्था नहीं रही, तब? तब क्या हुआ? कम्युनिज़्म जाग उठा। ये कम्युनिस्ट क्या हैं? उन पूँजीपतियों की औलाद जो धन को अपने सीने से लगाये फिरते हैं। बैंक में एक 'फ़िक्स्ड डिपॉज़िट' हो गई। फिर एक और 'फ़िक्स्ड डिपॉज़िट'। फिर एक और, तब और, तब और, कोई अन्त नहीं। मैं कम्युनिज़्म को अच्छा नहीं कहता। कम्युनिज़्म मनुष्य को सुखी नहीं करेगा, सोशलिज़्म भी नहीं करेगा। जैसा समाज आज बन रहा है, उसमें दान-पुण्य समाप्त हो जायेगा। नित-नये टैक्स आज लग रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति कहता है—हाथ तंग हो गया, दान कहाँ से करें? हर तीन सौ या चार सौ वर्ष पश्चात् दुनिया में यह दशा उत्पन्न होती है। लोग समाजवाद से पूँजीवाद की ओर, पूँजीवाद से समाजवाद की ओर बढ़ते हैं। वास्तव में दोनों ग़लत हैं। परन्तु आज जो ग़लत अवस्था उत्पन्न हुई, इसका उत्तरदायित्व किसपर है? निश्चितरूप से उन पूँजीपतियों पर जिन्होंने धन को अपना देवता बना लिया।

एक बार स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी के साथ मैं कलकत्ता गया। एक सेठ जी के पास हम दान लेने गये। सेठ साहब ने कहा, "आप पहले मुझसे बात कर लीजिये, मेरे साथ खाना भी खाइये।" हमने कहा, "बहुत अच्छा।" भोजन के समय हम उसके पास पहुँचे। हमारा भोजन तो ठीक था, परन्तु सेठ जी की थाली चाँदी की थी। उसमें एक कटोरा भी चाँदी का था। थाली में जापानी गुब्बारे के समान फूला एक फुलका पड़ा था। चाँदी के कटोरे में थोड़ा-सा पीला पानी था। पता लगा कि सेठ जी यही एक फुलका और पीला पानी खायेंगे। आश्चर्य से हमने पूछा, "सेठ जी, आप इतना ही खाते हैं ?" वे बोले, "हाँ, इससे अधिक पचता नहीं।" हमने कहा, "कोई मक्खन या दूध तो लेते होंगे प्रातः ?" उन्होंने कहा, "राम-राम करो जी! मेरे छोटे भाई ने एक बार दूध पिया था, पेट में बादल-जैसे गर्जने लगे। तब से हमारे घर में कोई दूध नहीं पीता।" महात्मा जी ने कहा, "लस्सी तो पीते होंगे आप ?" सेठ जी बोले, "एक बार दो दिन लस्सी पी थी, महीनाभर जुकाम रहा, उसके बाद कभी नहीं पी।" मैंने कहा, "बादाम, पिस्ता, किशमिश तो खाते होंगे कभी ?" वे बोले, "बादाम पचते नहीं, पिस्ता बहुत गर्म होता है, किशमिश मैं जानता नहीं कि क्या होती है।" महात्मा जी ने कहा, "फिर फल ही खा लिया करो।" सेठ जी बोले, "वे मेरे अनुकूल नहीं बैठते।" मैंने दिल-ही-दिल में कहा, 'फिर संखिया खाओ, वही तुम्हारे लिए रह गया है।' यह है कम्युनिज़्म का वास्तविक कारण। ये लोग न स्वयं खाते हैं, न दूसरों को खाने देते हैं। यह नहीं करते कि स्वयं न खा सकें तो दूसरों को ही खिला दें। दुनिया में भूख न रहने दें। ग़रीबी न रहने दें। इनके ग़लत दृष्टिकोण से कम्युनिज़्म पैदा होता है। वे कम्युनिस्ट वास्तव में इन्हीं पूँजीपतियों की औलाद हैं, जो इनसे बहुत

घबराते हैं। बुरा काम ये स्वयं करते हैं, जब दुःख आता है तो कहते हैं भगवान् की मर्ज़ी। एक अद्‌भुत खेल हमने बना रक्खा है। कोई अच्छी बात हो जाय तो हम कहते हैं, "देखो, मैंने क्या कमाल किया!" कोई बुरी बात हो जाये तो कहते हैं, "भगवान् की ऐसी इच्छा थी।" इसका अर्थ तो यह हुआ, अच्छे-अच्छे काम हम करते हैं, भगवान् केवल बुरे कार्य करता है। ऐसा तो है नहीं। हम स्वयं ही अपने लिए दुःख उत्पन्न करते हैं, स्वयं ही चिल्लाते हैं कि दुःख कहाँ से आ गया।

अब स्वः की बात सुनो। स्वः का अर्थ है, "ऐ प्रभो! मुझे सुख दे।" अच्छी प्रार्थना है यह। अवश्य करनी चाहिए। परन्तु इसके साथ यह भी तो प्रयत्न होना चाहिए कि मैं भी किसी को सुख दूँ। यदि मैं किसी को सुख नहीं देता, यदि मैं दूसरों के कष्ट को दूर नहीं करता और केवल भगवान् से ही सुखों की याचना करता हूँ तो याद रक्खो, यह याचना कभी नहीं मानी जायेगी। अरे, जाना चाहते हो बम्बई, चढ़ बैठे हो उस गाड़ी में जो अमृतसर जाती है, तो बम्बई में पहुँचोगे किस प्रकार?

हमारे शास्त्रों ने कहा, "उठो, बढ़ो! ऐसा स्थान खोजो सुन्दर मकान बनाने के लिए, जहाँ रोग न हों, व्याधियाँ न हों।" हमने समझा कि मकान बनाने का अर्थ केवल पैसा कमाना है। अफ्रीका में बहुत-से भारतवासी रहते हैं। अफ्रीका के बहुत-से भागों में बहुत हरियावल है; व्यापार के बहुत साधन हैं। जो लोग भी वहाँ गये हैं वे अधिकांश में पैसा कमाने के लिए गये। वहाँ उन्होंने मकान भी बना लिये। परन्तु अफ्रीका की हरियावल से स्वास्थ्य नहीं, व्याधियाँ निकलती हैं। सौ में से डेढ़ सौ हिन्दुस्तानी वहाँ बीमार हैं। मेरा तात्पर्य यह है कि कई लोगों को दो-दो बीमारियाँ हैं। अब सोचिये कि वहाँ जाकर क्यों बना लिया उन्होंने मकान? वेद ने तो ऐसा मकान

बनाने के लिए नहीं कहा। वह तो कहता है ऐसा स्थान ढूँढो जो स्वास्थ्य देनेवाला हो। ऐसा मकान बनाओ जिसके हर कमरे में सूर्य की धूप आती हो। ऐसा आपने किया नहीं, अब रोने और चिल्लाने से क्या होगा? रोओ नहीं। रोने से, चिन्ता करने से, हर समय चिन्तित रहने से आयु घटती है, बढ़ती नहीं। जो बहुत चिन्ता करता है, उसके बाल असमय में ही सफेद हो जाते हैं। यह मेरा बच्चा बैठा है रणवीर, फाँसी की कोठरी में था यह, तो मैं प्रतिदिन इसके पास जाया करता था इसको उपनिषद् सुनाने, भगवान् का रूप बताने और आत्मकल्याण का मार्ग दिखाने के लिए। जिस कोठरी में था यह, उसके सामनेवाली कोठरी में एक नौजवान था। उसको भी फाँसी के दण्ड की आज्ञा थी, परन्तु अभी अपील की हुई थी। आशा थी उसके दिल में। काफी स्वस्थ और बलवान् नवयुवक था वह। मौज में आकर गाया करता था—

तू बख़्श गुनाह हुण मेरे, मैं खादे कुक्कड़ तेरे।

परन्तु अन्त में वह दिन आया, जब उसकी अपील अस्वीकार हो गई। उससे एक दिन पूर्व उसे मैंने देखा था, हँसता हुआ, चमकता हुआ चेहरा, स्याह काले बड़े-बड़े बाल, भरी हुई काली दाढ़ी। दूसरे दिन उसकी कोठरी की ओर देखा तो एक बूढ़ा वहाँ बैठा था, पीला चेहरा, सफेद दाढ़ी, सिर के बाल भी सफेद, चुपचाप जैसे बेहोश हो गया हो। मैंने जेलवालों से पूछा, "कल जो क़ैदी यहाँ था, वह कहाँ गया?" उन्होंने बताया, "यही वह क़ैदी है। कल इसकी अपील अस्वीकार हो गई। एक ही रात में इसके बाल सफेद हो गये।"

यह है चिन्ता का परिणाम! और यहाँ किसी को भी पूछकर देखिये, सबको कोई-न-कोई चिन्ता है। हाँ, बम्बई में एक बार एक माँ को मैंने देखा, उसे अद्भुत चिन्ता थी। सेठ शूरजी बल्लभदास के सुपुत्र श्री प्रतापजी शूरजी ने चारों वेदों

के मन्त्रों से भारी यज्ञ किया। बहुत बड़े सेठ हैं। सेठ के अतिथि भी तो सेठ ही होते हैं। उन्हीं में से एक माता थी, बहुत चिन्तावाली। मैंने पूछा, "माँ! तुम्हें किस बात की चिन्ता है?" वह बोली, "मुझे यह चिन्ता है कि मुझे कोई चिन्ता नहीं।"

अब बताइये! ऐसे लोगों का कोई क्या करे?

वेद कहता है कि सदा प्रसन्न रहो। जो प्रसन्न नहीं रहता, उसे गृहस्थ-आश्रम में प्रविष्ट होने का, उसमें रहने का कोई अधिकार नहीं। मैं एक बार एबटाबाद में गया। एक सज्जन के यहाँ ठहरा। उनका नाम नहीं लूँगा। मेरा स्वभाव है बच्चों के साथ खेलना। उनके भी बच्चे थे। दिनभर मैं उनके साथ खेलता रहा। श्रीमान् दफ़्तर गए हुए थे। दिनभर घर के अन्दर हँसी के ठहाके गूँजते रहे; परन्तु जैसे ही साढ़े चार बजे, वैसे ही एक बच्चे ने कहा, "अरे, पिताजी के आने का समय हो गया!" दूसरे ने कहा, "समय क्या, सामने सड़क पर तो आ रहे हैं वे!" जल्दी से एक बच्चा सोफे के नीचे जा छुपा, एक पलँग के नीचे घुस गया, एक मेज़ के नीचे चला गया, हर ओर सन्नाटा छा गया। श्रीमान् जी बड़े रोब से आये। सामनेवाली कुर्सी पर बैठ गये। मैंने कहा, "भाई, तुम्हारे बच्चे तुमसे इतना क्यों डरते हैं? वह देखो, तुम्हें आता देखकर एक मेज़ के नीचे जा छुपा है, एक सोफे के पीछे दुबका पड़ा है, एक पलँग के नीचे घुस गया है।" बच्चे अपनी पोल खुलने पर निकलकर भागे। मैं हँस उठा। वे श्रीमान् जी मुस्करा भी नहीं सके; बोले, "मैं घर में तनिक रोब से रहता हूँ, इससे घर का डिसिप्लिन ठीक रहता है।" मैंने कहा, "तुम्हारा यह घर है या सेण्ट्रल जेल? यह क्या रोब जमा रक्खा है तुमने कि तुम आओ और बच्चों के प्राण सूख जायें? अरे, होना यह चाहिए कि तुम आओ और बच्चे तुमसे चिपट जायें। कोई

सिर पर चढ़ जाये, और कोई हाथ पकड़ ले, कोई कन्धे पर बैठे। ऐसा करने से तुम्हारा भी रक्त बढ़ेगा, बच्चों का भी।"

इसीलिए वेद कहता है, "प्रसन्न रहो।" परन्तु कुछ लोगों से पूछिये, "रोते क्यों हो ?" तो वे कहते हैं, "शक्ल ही ऐसी है।" अब जिनकी शक्ल ही ऐसी है, उनके लिए क्या कहूँ ! कुछ लोग कहते हैं कि "आनन्द स्वामी ! तू चला गया है घर-बार छोड़ के गंगोत्री, हम रहते हैं दिल्ली में। यहाँ कभी यरकान (पीलिया), कभी भरकान, कभी वोट, कभी खोट। हमको पूछ के देख, चिन्ता के बिना निर्वाह नहीं।" मैं कहता हूँ निर्वाह है। कोई दुःख और कष्ट हो तो उसे दूर करने का यत्न करो अवश्य, फिर फल को भगवान् पर छोड़ दो। हर समय चिन्ता में डूबे मत रहो और सचाई को मत भूलो कि—

या खून पसीना करके बहा, या तान के चादर सोता जा।
यह नाव तो चलती जायेगी, तू हँसता रह या रोता जा॥

यह क्या हुआ कि करो-कराओ कुछ नहीं, बस चिन्ता करते रहो। याद रक्खो, जो दुःख तुमने स्वयं उत्पन्न किये हैं, उन्हें दूर करने का यत्न भी तुम्हें स्वयं करना होगा; शेष जो तुम्हारे बस में नहीं, उनके लिए भगवान् से प्रार्थना करोगे तो दुःख दूर होंगे अवश्य। दुःखों से घबराओ नहीं। महाभारत के युद्ध के बाद कृष्ण भगवान् जब द्वारका जी को वापस जाने लगे तो कुन्ती से बोले, "माँ! कोई और भी सेवा है क्या ?" कुन्ती बोली, "हाँ भगवन् ! ऐसी कृपा करो कि हमपर कष्ट-क्लेश आते ही रहें।" कृष्ण भगवान् ने पूछा, "ऐसी बात क्यों माँगती हो ?" कुन्ती ने कहा, "जब-जब कष्ट आता है तब-तब ही आपके दर्शन होते हैं, इसलिए कहती हूँ, कष्ट आते ही रहें तो अच्छा है।" दुःखों से घबराओ नहीं। याद रक्खो, वह सब-कुछ देखनेवाली माँ, वह महान्

कृपावाली महाशक्ति, हर समय तुम्हें देखती है, हर समय तुम्हारे दुःखों को दूर करने के लिए तैयार है, पुकारकर कह—

प्रभु आपकी हूँ मैं शरण, निज चरण-सेवक कीजिए ।
मैं कुछ नहीं हूँ माँगता, जो आप चाहें दीजिए ।।
सिर आँख से मंजूर है, सुख दीजिए दुख दीजिए ।
जो है इच्छा कीजिए, पर दूर न दर से कीजिए ।।

पड़ा रहने दो अपने द्वार पर, धुल जाने दो आत्मा का मैल । पुकार के कहो—तुम ही सब-कुछ हो, तुम ही महान् हो ।

इस प्रकार जो करता है, उसके दुःखों का नाश अवश्य होता है ।

परन्तु मैं 'स्वः' की बात कर रहा था । ईश्वर सुखों को देनेवाला है । सुख का अर्थ है, वह जिसकी इन्द्रियाँ अच्छी हैं । दुःख का अर्थ है, वह जिसकी इन्द्रियाँ बुरी हैं । अच्छी का अर्थ है इच्छा के अनुकूल और बुरी का अर्थ है इच्छा के प्रतिकूल । जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं वही सुखी है; जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं, वह प्रत्येक अवस्था में दुःखी है, पराये वश में है, वह पराधीन है और—

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।

हमारे प्राचीन ऋषि कहते थे, अपनी आवश्यकताओं को कम-से-कम रक्खो ताकि तुम्हें आवश्यकताओं के पूरा न होने से कष्ट न हो । आज हमने अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाना ही अपना नियम बना लिया है । बढ़ाओ आवश्यकताओं को, परन्तु याद रक्खो, जितना बढ़ाओगे उतना ही दुःख पाओगे, उतना ही सुख से भी दूर होते जाओगे । एक बार हम लोग बम्बई में एक सज्जन के यहाँ दान माँगने गये । लाला मेहरचन्द जी महाजन जो पिछले दिनों भारत की सुप्रीम कोर्ट के चीफ़ जस्टिस थे, हमारे साथ थे । लाला मेहरचन्द जी

प्रिंसिपल भी हमारे साथ थे ; लाला साईंदास जी प्रिंसिपल भी थे। जिन सज्जन को हम मिलने गये, वह लाला साईंदास जी का शिष्य था। देर तक हम प्रतीक्षा करते रहे। वे ऊपरवाले कमरे से नीचे नहीं आये। हमने नौकर से पूछा, "साहब क्या कर रहे हैं ?" वह बोला, "नेकटाई बाँध रहे हैं।" अब बताइये, यह नेकटाई की क्या आवश्यकता है ? क्या अंग्रेज़ों से पहले भी इस देश में कोई नेकटाई पहनता था ? अंग्रेज़ चला गया, अंग्रेज़ियत नहीं गई। आज भी कनाट-प्लेस में जाकर देखिये, सैट, मैट, कैट, पता नहीं क्या-कुछ दिखाई देता है। बढ़ाये जाओ आवश्यकताओं को, परन्तु यह सुख का मार्ग तो नहीं है। इन्द्रियों को वश में रखना ही सुख है। उनका वश में न होना सुख का नहीं, सदा दुःख का कारण होता है। तुम यदि भगवान् से सुख चाहते हो, तो अपने लिए सुख पैदा करने का यत्न करो। यह है भूः भुवः और स्वः का अर्थ।

यह अर्थ जब समझ आ जाए, ओ३म् का जाप जब हो जाए, तब आसन में बैठ जाओ। आसन का अर्थ शरीर की ऐसी दशा है, जिसमें आप बिना कष्ट के तीन-चार घण्टे या अधिक देर तक बैठे रह सकें। आसन में बैठकर, आँखें बन्द करके, माथे में जहाँ दोनों भौंहें मिलती हैं, वहाँ ध्यान लगाओ। योगी लोग उसे आज्ञाचक्र कहते हैं। कुछ लोग उसे त्रिवेणी भी कहते हैं, क्योंकि वहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती आकर मिलती हैं। कुछ लोग उसे प्रयाग भी कहते हैं, क्योंकि वहाँ इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा का मिलाप होता है। पिछली बार प्रयाग में कुम्भ हुआ तो मैं भी वहाँ गया था। जिस भीड़ में सैकड़ों आदमी कुचलकर मर गये, उनमें मैं भी था। भीड़ में फँस गया था। ऐसा ज्ञात हुआ कि बचूंगा नहीं। यदि मुझे कुम्भक प्राणायाम करने की विधि पता न होती तो बचता

भी नहीं, परन्तु बचा। दूसरे दिन एक सम्मेलन में भाषण भी दिया। उसमें कितने ही घायल भी उपस्थित थे। उनसे मैंने पूछा, "क्यों भाई, तुम्हें पीड़ा तो नहीं हुई, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि जो व्यक्ति एक बार प्रयाग में नहा ले उसके जन्म-जन्म के दुःख कट जाते हैं, जन्म-जन्म की पीड़ा नष्ट हो जाती है ?" वे बोले, "हमें तो पीड़ा होती है ; शास्त्र ग़लत कहते हैं क्या ?" मैंने हँसकर कहा, "शास्त्र ग़लत नहीं कहते, तुम ग़लत समझे हो। जिस प्रयाग की बात शास्त्र कहते हैं, वह यह इलाहाबाद का प्रयाग नहीं, अपितु यह माथे का प्रयाग है। दोनों भौंहों के मध्य में भृकुटि है जहाँ गंगा, यमुना, सरस्वती के रूप में इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा नाड़ियाँ आकर मिलती हैं। यहाँ जो स्नान कर लेता है, यहाँ ध्यान लगाकर जो भूः भुवः स्वः कहता है उसके सभी कष्ट और क्लेश दूर हो जाते हैं, उसके लिए कोई पीड़ा शेष नहीं रहती। परन्तु अब समय पूरा हो गया है, शेष कल। ओ३म् तत् सत् !

छठा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

आप अगर कभी पण्डित जवाहरलाल जी को मिलें, पण्डित जी आपसे पूछें, "बताओ क्या माँगते हो ?" और आप कहें कि, "मुझे एक पाव रसगुल्ले मँगवा दो।" तो बताइये कि लोग आपको क्या कहेंगे ? जवाहर जी तो आपको बहुत-कुछ दे सकते हैं। सारे देश की शक्ति इनके हाथ में है। देश का भला वे कर सकते हैं, आपका भविष्य बना सकते हैं। उनसे एक पाव रसगुल्ले माँगना यदि पागलपन नहीं तो और क्या है ? इसी प्रकार भगवान् के सामने जाकर, यदि आप

उन वस्तुओं को माँगने लगें जो निश्चय ही नष्ट होनेवाली हैं, तो बताइये क्या यह ठीक होगा ? भूः भुवः स्वः का वर्णन करते हुए कल मैंने आज्ञाचक्र में बने प्रयाग की बात कही थी। वहाँ पहुँचकर जब कहो, "हे प्राणप्यारे ! दुःखों को दूर करनेवाले ! सुखों के देनेवाले भगवान् !" और जब वह प्रकाश जाग उठे, अन्धकार दूर करता हुआ सूर्य सामने आ जाये, तब ऐसी वस्तु न माँगो जो नष्ट होनेवाली है। उस वस्तु को माँगो जो नष्ट नहीं होती ; जो आगे ले जाती है। यह वस्तु है मेधा।

भूर्भुवः स्वः—इन तीन व्याहृतियों में एक रहस्य है। उसे समझने की चेष्टा कीजिये। इनमें भगवान् को पहले दुःखों को दूर करनेवाला कहा गया है, दुःखों को दूर करने की प्रार्थना की गई है ; फिर सुखों को देनेवाला कहा गया, सुख देने की याचना की गई है—ऐसा क्यों ? हम प्रतिदिन पढ़ते हैं—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव ।।

इसमें भी भगवान् को सविता कहा गया है। इसमें भी पहले 'विश्वानि दुरितानि परा सुव' दुनिया-भर की बुराइयों को, कष्टों को, क्लेशों को और दुःखों को परे हटाने की प्रार्थना की गई है। इस प्रार्थना के पश्चात् कहा गया है—जो भद्र है, जो कल्याण करनेवाला और सुख देनेवाला है, वह हमारे पास ले आओ।

ऐसी बात कही गई तो क्यों ? पहले दुःखों और पापों को दूर करने के लिए प्रार्थना की गई तो किसलिए ? इसलिए कि जब तक अन्तःकरण का बर्तन शुद्ध न हो, तब तक अमृत उसमें डाला नहीं जा सकता। कहीं फूल बिखेरने हों तो वहाँ से पहले गन्दगी साफ़ कर दी जाती है। कहीं सुन्दर फ़र्श बिछाना

हो तो पहले झाड़ू देकर भूमि को शुद्ध कर लिया जाता है।

एक महात्मा थे। किसी घर में भिक्षा माँगने गये। घर की स्वामिनी देवी ने भिक्षा दी; हाथ जोड़कर बोली, "महात्मा, कोई उपदेश दो!" महात्मा ने कहा, "आज नहीं, कल उपदेश दूँगा।" देवी ने कहा, "तो कल भिक्षा भी यहीं से लीजिये।" दूसरे दिन महात्मा भिक्षा लेने के लिए चलने लगे तो कमण्डल में कुछ गोबर भर लिया, कुछ कूड़ा, कुछ करकट। कमण्डल को लेकर देवी के घर पहुँचे। देवी ने उस दिन बहुत अच्छी खीर बनाई थी उनके लिए। उसमें बादाम डाले थे, पिस्ता डाला था। महात्मा ने आवाज़ दी, "ओ३म् तत् सत्।" देवी खीर का कटोरा लेकर बाहर आई। महात्मा ने अपना कमण्डल आगे कर दिया। देवी उसमें खीर डालने लगी तो देखा कि वहाँ गोबर और कूड़ा भरा पड़ा है। रुककर बोली, "महाराज, यह कमण्डल तो गन्दा है।" महात्मा ने कहा, "हाँ, गन्दा तो है, इसमें गोबर है, कूड़ा है, परन्तु अब करना क्या है? खीर भी इसी में दो।" देवी ने कहा, "न महाराज! इसमें डालने से तो खराब हो जायेगी। मुझे दीजिये यह कमण्डल, मैं इसे शुद्ध कर लाती हूँ।" महाराज बोले, "अच्छा माँ! तब डालोगी खीर, जब कूड़ा-करकट साफ़ हो जाये?" देवी बोली, "हाँ।" महात्मा बोले, "यही मेरा उपदेश है, मन में जब तक चिन्ताओं का कूड़ा-करकट और बुरे संस्कार का गोबर भरा है, तब तक उपदेश के अमृत का लाभ नहीं होगा। उपदेश का अमृत प्राप्त करना है तो इससे पूर्व मन को शुद्ध करना चाहिए, चिन्ताओं को दूर कर देना चाहिए, बुरे संस्कारों को समाप्त कर देना चाहिए, तभी ईश्वर का नाम चमक सकता है, सुख और आनन्द की ज्योति जाग सकती है।"

जो अच्छा है, जो कल्याण करनेवाला और सुख देनेवाला

है, वह मेरे पास आये, उससे पूर्व यह आवश्यक है कि जो बुराई है, जो अंधकार है, वह दूर चला जाये। 'विश्वानि देव' के मन्त्र में भी यही बात है, भूर्भुवः स्वः में भी यही बात है। ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों का निचोड़ है यह, तीनों का सार।

यह एक भेद है। भूर्भुवः स्वः का अब एक और भेद सुनिये। ठोस रूप में यह भूर्भुवः स्वः ही प्राण, अपान और व्यान है। यह शरीर कैसे चलता है? यह संसार कैसे चलता है? प्राण, अपान और व्यान से। ओ३म् या गायत्री का जाप करता हुआ उपासक जब अपने अन्दर प्राण का सम्बन्ध संसार के समष्टिरूप प्राण से जोड़ लेता है, तब वह एक नहीं रहता, सारा संसार एक हो जाता है। हर वस्तु के साथ उसका सम्बन्ध हो जाता है जिसमें प्राण है और प्राण के बिना इस संसार में कोई भी वस्तु नहीं। वैदिक तत्त्व-ज्ञान के अनुसार यह सारा संसार एक विराट् परमपुरुष का शरीर है। वेद पुकारकर कहता है—

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्। यजु० ३१। २॥

'पुरुष ही है यह सब-कुछ, जो दिखाई देता है और अनुभव होता है।' सारा संसार एक ही शरीर है। इसीलिए आर्य लोग सारे संसार को अपना देश कहते थे। छोटे-छोटे देश बनाने का उन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया। छोटे-छोटे देश बनाने की बात उन लोगों ने चलाई जो आर्य-संस्कृति और आर्य-विचारधारा को भूल गये। जब तक यह संस्कृति और विचारधारा फिर से अपनाई नहीं जायेगी, जब तक यह सारा संसार एक राष्ट्र नहीं बन जायेगा, तब तक अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े समाप्त नहीं होंगे। दुनिया आज शान्ति-शान्ति चिल्लाती है। शान्ति का सही मार्ग इस वैदिक तत्त्व-ज्ञान को समझना और आर्य-विश्वास को अपनाना है कि यह सारा संसार एक ही पुरुष का शरीर है। भूर्भुवः स्वः का उपासक क्रियात्मक

रूप में ही यह अनुभव करता है कि सब जगह, सारे संसार में एक ही प्राण है; किसी के साथ उसकी शत्रुता नहीं। बृहदारण्यक उपनिषद् में आया है कि भूर्भुवः स्वः के द्वारा इस समष्टि या विराट् पुरुष की उपासना कैसे करनी चाहिए; लिखा है कि 'भूः' कहते ही यह सारी पृथिवी उपासक के सामने आ जानी चाहिए। पृथिवी और उसके प्राणी, चाहे मनुष्य हों या पशु-पक्षी हों या जलचर, वृक्ष हों या पौधे, नदियाँ हों या पहाड़, सागर हों या मरुस्थल—यह सारी पृथिवी, प्राणों से भरी हुई पृथिवी उसके समक्ष आनी चाहिए। भुवः कहते ही चन्द्रलोक उसके सामने आना चाहिए, स्वः कहते ही सूर्यलोक। जो पिण्ड में है, हमारे में है, वही ब्रह्माण्ड में, इस सारे विश्व में है। इसलिए बृहदारण्यक का ऋषि कहता है—

"जो ब्रह्माण्ड के विराट् और सत्यरूप पुरुष की भूर्भुवः स्वः के द्वारा प्रार्थना करता है, वह पाप को मार भगाता है, पाप उससे दूर चला जाता है…"

पाप को नष्ट करने का कितना सरल उपाय है यह! यह है भूर्भुवः स्वः की महिमा! यह है उसका वह रहस्य जिसे समझ लेने के बाद ज्ञात होता है कि इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।

अब गायत्री मन्त्र के अगले भाग की बात सुनिये। पिछली बार दिल्ली में जो व्याख्यान मैंने दिये, उनमें गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें बताई थीं, उन्हें अब दोहराऊँगा नहीं। गायत्री की महिमा के सम्बन्ध में भी कुछ बातें कही थीं, उन्हें भी दोहराना नहीं है। कुछ नई बातें सुनिये! श्रीमद्-भागवत के दसवें स्कन्ध के दसवें अध्याय में महात्मा शुकदेव जी महाराज परीक्षित को बताते हैं कि श्रीकृष्ण महाराज का दिन-भर का प्रोग्राम क्या था। शुकदेव जी ने कहा, "श्रीकृष्ण सूर्य निकलने से दो घड़ी पूर्व उठते थे। नित्यकर्म से छुट्टी

पाकर स्नान करते थे। अच्छे कपड़े पहनते थे। इतनी देर में हवन की सामग्री तैयार करके रख दी जाती थी। तब वे यज्ञ करते थे, प्रतिदिन करते थे, आहुतियाँ देते थे, फिर सन्ध्या करते थे, और फिर देर तक एक ही आसन में बैठे-बैठे गायत्री का जाप करते थे।"

सुनो, ऐ श्रीकृष्ण की पूजा करनेवालो! भगवान् श्रीकृष्ण भी प्रतिदिन यज्ञ करते थे, प्रतिदिन गायत्री का जाप करते थे। यह बात मैं नहीं कहता, श्रीमद्भागवत पुराण कहता है। भागवत पुराण के बाद देवी भागवत पुराण की बात सुनिये, उसमें लिखा है—

सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना।
ब्रह्मादयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च॥

'गायत्री की आराधना सब वेदों का साररूप है। ब्रह्मा और दूसरे लोग भी सन्ध्या के समय गायत्री का ध्यान करते थे, उसका जाप करते थे।'

और केवल भगवान् कृष्ण और ब्रह्मा ही नहीं, शिव जी महाराज भी गायत्री का जाप करते थे। माता पार्वती ने एक बार उनसे पूछा, "महाराज! आप इतनी सिद्धियाँ प्राप्त कर चुके हैं, किस प्रकार ये सिद्धियाँ आपको प्राप्त हुई हैं?" शिव जी महाराज बैठे थे कैलास पर, पार्वती उनके साथ थीं, उस समय उन्होंने यह प्रश्न पूछा। मैं वह स्थान देखकर आया हूँ। कितना सुन्दर स्थान है वह, यह तो मैं वर्णन नहीं कर सकता। १८,५०० फ़ीट ऊँची चोटी है वहाँ। तीन दिन तक उसके गिर्द घूमना पड़ता है। बर्फ़ में सोया तो नहीं जाता, किसी प्रकार कम्बल ओढ़कर पड़े रहते हैं लोग। मैंने भी यह यात्रा की। तीसरे दिन हम गौरीकुण्ड के किनारे पहुँचे। गौरीकुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई एक मील है, मानसरोवर जितनी बड़ी तो नहीं, फिर भी काफ़ी बड़ी है। बर्फ़ जमी

रहती है उसके ऊपर। वर्फ़ को तोड़कर एक कमण्डल जल लेकर मैंने अपने ऊपर डाला। शरीर सुन्न हो गया। दूसरा कमण्डल डालने की हिम्मत नहीं हुई। कपड़े पहनकर भजन करने को बैठ गया। भजन करके उठा तो सामने कैलास था—इतना सुन्दर, इतना आकर्षक और इतना विशाल कि उसका चित्र खींचने को शब्द नहीं मिलते। दुनिया में बहुत-से सुन्दर दृश्य हैं—हरे-भरे लहलहाते हुए खेत, फूलों से लदे हुए पहाड़, आकाश को छूते हुए वृक्ष, पागल होकर नाचती हुई सागर की लहरें, बड़े-बड़े आबशार (Falls), बड़ी-बड़ी झीलें। परन्तु कैलास की उस चोटी से अधिक सुन्दर भी कोई वस्तु है, यह मैं जानता नहीं। ऐसा लगता है कि भारत में और दूसरे देशों में जो मन्दिर बनाये गए, वे शायद इसी कैलास को देखकर बनाये गए। चाँदी-जैसा बर्फ़ का चमकता हुआ मन्दिर है वह। दोनों ओर बर्फ़ है, परन्तु बीच में थोड़ा-सा स्थान खाली है जहाँ काली चट्टान दिखाई देती है। मैंने अपने गाइड से पूछा, "वह स्थान खाली क्यों है ?" उसने कहा, "लोगों का विश्वास है कि उस जगह बैठकर भगवान् शिव और पार्वती बातें किया करते थे।" मैंने कहा, "मुझे वहाँ ले चल, मैं उस स्थान पर बैठना चाहता हूँ।" वह बोला, "नहीं स्वामी जी ! वहाँ जाना बहुत भयप्रद है। बहुत दूर नहीं वह स्थान, यहाँ से केवल १००० फ़ीट ऊँचा है, परन्तु मार्ग कोई नहीं, जाना असम्भव है।" मैंने कहा, "अरे भाई, असम्भव क्या है ? चल मेरे साथ।" वह बोला, "मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं, मर गया तो क्या होगा ?" मैंने कहा, "मैं ही क्या अनाथ हूँ? चल तुझे पारितोषिक दूंगा।" कुछ पारितोषिक के लोभ से, कुछ मेरे आग्रह के कारण अन्त में वह चला। तीन घण्टे के प्रयत्न के पश्चात् अन्त में हम एक हज़ार फ़ीट ऊँचे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ कभी शिव और पार्वती बैठा

करते थे। उस स्थान को देखते ही मैं बैठ गया। गाइड ने कहा, "उठो! चलो सन्ध्या होनेवाली है। यहीं बैठे रहे तो वर्फ़ में जम जाओगे।" मैंने हँसते हुए कहा, "बर्फ़ में जमने से न डर, बैठ जा तू भी। तू शिव बन जा, मैं पार्वती बनता हूँ। आओ दोनों बैठकर बातें करें।" वह बोला, "आपको तो मौत के आगे हँसी सूझती है।" मैंने कहा, "मृत्यु के सामने भी हँसी न सूझे तो फिर हँसने का लाभ क्या!" थोड़ी देर बैठा वहाँ। भगवान् का नाम लिया, फिर नीचे आ गये हम दोनों।

उसी स्थान पर भगवान् शिव बैठे थे जब पार्वती ने उनसे पूछा, "महादेव! इतनी सिद्धियाँ आपको प्राप्त हैं, वे किस प्रकार प्राप्त हुई?" शिव ने कहा, "देवि, जितनी भी सिद्धियाँ मुझे प्राप्त हैं, वे सब गायत्री की उपासना से मिलती हैं।"

ऋषि तो गायत्री की महिमा गाते हुए थकते नहीं। बृहदारण्यक उपनिषद् में उसके एक-एक शब्द की महिमा बताई गई है। एक-एक शब्द के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसकी उपासना करनेवाला क्या पाता है। छान्दोग्य उपनिषद् में भी इसी प्रकार की महिमा का वर्णन है और 'ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका' में महर्षि दयानन्द जी कहते हैं—

"बहुत श्रद्धा से गया संज्ञक प्राण आदि में परमेश्वर की उपासना करने से जीव की मुक्ति हो जाती है। प्राण में बल और सत्य प्रतिष्ठित हैं क्योंकि परमेश्वर प्राण का भी प्राण है, और उसका प्रतिपादन करनेवाला गायत्री मन्त्र है, जिसको 'गया' कहते हैं।"

इसीलिए इस गायत्री को "गया" कहते हैं। जो इसका गायन करता है, उसे वह तारती है। इसीलिए अथर्ववेद पुकार-कर कहता है—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ अथर्व० १९ । ७१ । १ ॥

इस मन्त्र का देवता गायत्री है । मन्त्र के देवता का अर्थ है मन्त्र का विषय । वहाँ गायत्री का वर्णन करते हुए कहा कि, "ऐ वर देनेवाली, प्रेरणा करनेवाली, उन लोगों को पवित्र करनेवाली जो शारीरिक जन्म के बाद आत्मिक ज्ञान की ओर बढ़ते हैं, ऐ प्रत्येक प्रकार के ज्ञान की जन्मभूमि, तू मुझे धर्म देती है..."

परन्तु धर्म क्या है ? कई व्यक्तियों को धर्म का अर्थ ही समझ में नहीं आता । धर्म का सरल और सीधा-सा अर्थ है—वह मार्ग जिससे लोक और परलोक दोनों सुधर जायें । इसीलिए गायत्री को धर्म देनेवाली कहा गया । परन्तु धर्म तो शरीर के साथ ही है । शरीर न हो तो धर्म नहीं हो सकता । लोक और परलोक के सुधारने का प्रश्न भी उत्पन्न नहीं होता । बूढ़े-बूढ़े लोग जब किसी पर प्रसन्न होते हैं तो कहते हैं, "तेरी लम्बी आयु हो !" जब से मैं संन्यासी बना हूँ, कितने ही घरों में गया । प्रत्येक स्थान पर इस लम्बी आयु की इच्छा उपस्थित है । पति चाहता है पत्नी की आयु लम्बी हो, पत्नी चाहती है वह पति के हाथों में जाये ।

और वेद कहता है, "ऐ गायत्री माँ ! तू लम्बी आयु देनेवाली है ।"

परन्तु लम्बी आयु ही तो सब-कुछ नहीं । आयु हो गई लम्बी परन्तु शरीर को हो गया अर्धांग, आदमी चलने-फिरने से भी हो गया लाचार—तब दीर्घायु क्या करेगी ? रोगी व्यक्ति मरना चाहता है, दीर्घायु नहीं चाहता ।

इसलिए वेद कहता है, "माँ ! धर्म देनेवाली, दीर्घायु देनेवाली, तू स्वास्थ्य देनेवाली और स्वस्थ शरीर देनेवाली

भी है।"

गायत्री के उपासक को रोग या तो होता नहीं, हो जाये तो बहुत शीघ्र अच्छा हो जाता है। परन्तु केवल दीर्घायु और स्वास्थ्य ही तो मनुष्य की आवश्यकता नहीं है। दीर्घ आयु हो, स्वास्थ्य अच्छा हो, तो मनुष्य सन्तान भी चाहता है।

इसीलिए वेद-मन्त्र ने कहा, "ऐ वेद माता, वर को देनेवाली, तू सन्तान भी देती है।"

अच्छा जी, बच्चे हो गये आपके यहाँ पाँच, दस, पन्द्रह, बीस; स्वास्थ्य भी अच्छा है, आयु भी लम्बी है, परन्तु यदि घर में खाने को कुछ नहीं तो फिर क्या होगा ? बच्चों को अनाथालय में भेज देना होगा क्या ? सरकार के अर्पण कर देना होगा कि मैंने बच्चे पैदा कर दिये, अब जवाहरलाल पालता फिरे ?—नहीं, गायत्री के उपासक को यह कठिनाई नहीं होती।

वेद कहता है, "गायत्री माँ ! तू पशु—गाय, भैंस, गाड़ी, मोटरों और जहाज़ों को देनेवाली है, धन और दौलत को देनेवाली है, इनको बढ़ानेवाली है, इच्छाओं को पूरा करनेवाली है।"

परन्तु मनुष्य के पास दीर्घायु हो, अच्छा स्वास्थ्य हो, विशाल परिवार हो, अन्न के भण्डार हों, मोटरें हों, गाड़ियाँ हों, धन की रेल-पेल हो, तो भी वह एक वस्तु और चाहता है। वह वस्तु है मान, प्रतिष्ठा—यह बात कि लोग इसकी प्रशंसा करें। इसलिए मन्त्र कहता है, "तू कीर्ति को देनेवाली है।"

परन्तु क्यों जी ! आयु, स्वास्थ्य, परिवार, धन-धान्य, कीर्ति—ये सब वस्तुएँ अच्छी हैं अवश्य, परन्तु हैं क्या ? एक दिन तो इनको नष्ट होना है। लम्बी-से-लम्बी आयु सदा नहीं रहती। अच्छे-से-अच्छा स्वास्थ्य भी अन्ततः अवश्य खराब हो जाता है। बड़े-से-बड़ा परिवार भी अन्त में नष्ट हो जाता

है। धन के ढेर भी अन्त में समाप्त हो जाते हैं। कीर्ति की भी एक सीमा है; इससे आगे वह जाती नहीं। इन सब के मिलने से मनुष्य को सुख होता है अवश्य, उसका कल्याण नहीं होता। कल्याण है इस बात में कि इन सब वस्तुओं के भोगने के पश्चात् उस ब्रह्मलोक को प्राप्त किया जाये, जहाँ प्रभु के दर्शन होते हैं; जहाँ ऐसा आनन्द है, जो कभी समाप्त नहीं होता, जिसका कोई अन्त नहीं है। इसलिए वेद भगवान् ने कहा, "यह सब-कुछ देने के बाद तू उपासना करनेवाले को ब्रह्मलोक में ले जाती है, प्रभु के द्वार पर पहुँचा देती है, उनका दर्शन करा देती है।"

इतनी बड़ी महिमा है इस मन्त्र की, इसीलिए महर्षि दयानन्द ने पूना में भाषण देते हुए इसे महामन्त्र कहा, इसीलिए वेद और उपनिषद् इसकी चर्चा करते हैं, इसीलिए पुराण इसकी कहानी कहते हैं, भगवान् कृष्ण इसका जाप करते थे, ब्रह्मा करते थे, शिव करते थे। क्यों करते थे? कोई बात है न इसमें? वह बात यह है कि इस मन्त्र में स्तुति, प्रार्थना और उपासना, तीनों को इकट्ठा कर दिया गया है। इस महिमा के बाद गायत्री की बात सुनिये। परन्तु यह बात कठिन है, इससे पूर्व अपना मन शान्त कर लीजिये, मन-ही-मन में गायत्री मन्त्र पढ़िये और फिर मन को खाली छोड़ दीजिये। थोड़ी देर के लिए मैं आपको ध्यान की अवस्था तक ले जाऊँगा, ताकि प्रत्येक बात आपकी समझ में आ जाये।

(तब एकदम जैसे सन्नाटा छा गया। सब ओर सन्नाटा है। उसी सन्नाटे में स्वामी जी की आवाज़ सुनाई दी—'ओ३...म्' और स्वामी जी कहने लगे--)

इस प्रकार सन्नाटा था, कहीं कोई आवाज़ न थी, रूप न था, उस समय परमेश्वर की प्रेरणा करनेवाली शक्ति ने—सविता ने, सोई हुई प्रकृति को जगा दिया। सबसे पहले

महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ जिसे शास्त्र समष्टि बुद्धि कहते हैं और उसका थोड़ा-थोड़ा भाग इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मानुसार मिलता है। इस समष्टि बुद्धि के पश्चात् उत्पन्न हुआ अहङ्कार, उससे पाँच तन्मात्राओं का जन्म हुआ। पाँच तन्मात्रा से पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों का जन्म हुआ। जैसे हमारे अन्दर एक चित्त है—एक जीवन-शक्ति है, उसी प्रकार सारे संसार में भी समष्टि चित्त या समष्टि जीवन-शक्ति भी है। अपने चित्त को जब तक हम उस समष्टि चित्त में न ले जायें और वहाँ से आगे सविता तक न पहुँचें, तब तक परमात्मा नहीं मिलता। सविता केवल उत्पन्न ही नहीं करता, पालन भी करता है। लोग जब थक जाते हैं तब उन्हें सुला भी देता है; तब हम कहते हैं कि प्रलय आ गई। पुराणों में जिस शक्ति को ब्रह्मा, विष्णु और महेश के नाम से याद किया गया, वही सविता है। सूर्य को भी इसलिए सविता कहते हैं कि वह प्रातःकाल के समय लोगों को उठाता है, दिनभर कार्य करने की शक्ति देता है, रात को सुला देता है। दिन को प्रलय हो जाती है, उस समय रात आ जाती है और दूसरी प्रातः फिर से दिन आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार परमात्मा की सविता-शक्ति प्रलय के बाद सोई हुई प्रकृति को जगाकर इसमें जीवन फूंक देती है। तब चार अरब वर्ष का दिन आरम्भ होता है। चार अरब वर्ष के बाद प्रलय आती है। रात छा जाती है। रात्रि और शान्ति। चार अरब वर्ष तक यह रात्रि रहती है। आठ अरब के इस दिन और रात्रि के पश्चात् फिर से सृष्टि आरम्भ होती है। फिर से सविता-शक्ति कहती है, "उठो, जागो, सवेरा हो गया!" सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में इस महान् सविता-शक्ति ने भूर्भुवः स्वः की भावना दे दी है ताकि प्रत्येक वस्तु उपस्थित हो बढ़ती जाये और अन्त में आनन्द के अन्दर पहुँचकर सो जाये। एक पूरी स्कीम उसने बना दी है। बीज

से पौधा बनता है, पौधे से वृक्ष, वृक्ष पर फल और फूल खिल उठते हैं, और तब यह धीरे-धीरे सोने लगता है, सब-कुछ समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार यह सृष्टि है, जागती है, बनती है, समाप्त हो जाती है, ताकि फिर से जागे, फिर से बने।

गायत्री की उपासना करनेवाला भक्त जब गायत्री-मन्त्र को पढ़ता हुआ सविता शब्द पर पहुँचे तो उसे अनुभव करना चाहिए कि उसके आसपास कोई दुनिया नहीं है; केवल अनन्त, बेअन्त सोई हुई प्रकृति है, इसमे गति नहीं, रस नहीं, गन्ध नहीं, शब्द नहीं, बेअन्त सन्नाटा है हर ओर, तभी इस सोई हुई प्रकृति में गति आई है, गति से ज्योति उत्पन्न हुई है, अनन्त रोशनी है वहाँ, उसके अन्दर प्रचण्ड ताण्डव करती हुई आग जल उठी है। धीरे-धीरे यह आग बढ़ी है, एक विशाल जलता हुआ गोला बन गई है, फिर यह गोला फटा है, इससे अनन्त सूर्य निकलकर उछले हैं, अनन्त चाँद, अनन्त तारे; उन्हीं में से एक जलता हुआ तारा उसके सामने आया है। लगातार घूमे जाता है वह, घूमे जाता है और जले जाता है—कई-कई मील तक ज्वालाएँ उठ रही हैं। इन ज्वालाओं के धुएँ से चहुँ ओर बादल-से बन जाते हैं, गर्मी से भाप बनती है, भाप से घटाएँ जाग उठती हैं, बेताब और बेचैन बिजलियाँ उनमें चमकती हैं, बार-बार वे गर्जती हैं, कान-पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती। तब वर्षा होने लगती है, धुआँधार वर्षा, गर्जते हुए बादल, तड़पती हुई बिजलियाँ, गिरता हुआ पानी, शताब्दियों तक यह वर्षा होती रहती है, तब आग का वह गोला ठंडा होने लगता है। उसके ऊपर नदियाँ भागने लगी हैं, सागर बनने लगे हैं, पहाड़ उभरने लगे हैं, उनपर हरियावल जागने लगी है, वृक्ष, पौधे, फल और फूल झूमने लगे हैं, और तब इस लहलहाती पृथिवी पर नौजवान लड़के जाग उठे हैं, नौजवान लड़कियाँ। हर ओर वसन्त के फूल खिल उठे

हैं। वसन्त के गीत गूँज उठते हैं। इसी बात को वेद ने कहा है—

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः।। समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।।

इस मन्त्र को हम अघमर्षण मन्त्र कहते हैं। पाप को धोनेवाला मन्त्र कहते हैं, परन्तु इससे पाप धुलता कैसे है? उस ज्ञान से, जिसकी मैंने अभी चर्चा की। मनुष्य जब सृष्टि के रचने की बात सोचता है, जब वह देखता है कि जिस भूमि पर वह रहता है, वह कभी इस प्रकार बनी थी, वह इस विशाल सूर्यमण्डल में धूल के एक कण के समान है; और यह सूर्यमण्डल स्वयं इस विशाल सृष्टि में धूल के एक कण के समान है, अरबों-खरबों सूर्यमण्डल इस विश्व में हैं और इन सबको बनानेवाला वह महान् प्रभु है, तो वह सोचता है कि मैं क्या हूँ, मेरा अभिमान क्या है? जिन वस्तुओं के लिए मैं पागल हुआ फिर रहा हूँ वे क्या हैं? तब प्यार से, श्रद्धा से, वह अपने सिर को झुका देता है, उस आनन्द की ओर बढ़ता है, जिसका कभी अन्त नहीं, जो अजर और अमर है। इस प्रकार उसके पाप कटते हैं।

एक था राजा। एक बार अपने मन्त्रियों को कहा उसने, "दो 'अबके' लाओ, दो 'तबके' लाओ और दो ऐसे जो न अबके हों न तबके।" बहुत-से मन्त्री आश्चर्यचकित हुए कि यह माँग क्या है? यह 'अबके' और 'तबके' क्या हुआ? कौन उनकी खोज करे? कहाँ से लायें राजा के पास? परन्तु एक मन्त्री था समझदार; उसने कहा, "महाराज! मैं लाता हूँ।" और वह दो राजाओं को ले आया, दो साधुओं को, दो

साधारण व्यक्तियों को। उन्हें सामने करके उसने कहा, "महाराज! ये राजा लोग अबके हैं। इन्होंने पिछले जन्म में पुण्य किया था और अब उस पुण्य को भोग रहे हैं। ये दो तपस्वी साधु हैं। ये अबके नहीं, तबके हैं। आज ये पुण्य के मार्ग पर चलते हुए तप करते हैं और आगे जाकर ये इसका फल भोगेंगे। ये दो साधारण व्यक्ति हैं, इन्होंने न पिछले जन्म में कोई बड़ा पुण्य किया, न अब कर रहे हैं, ये अबके हैं न तबके हैं।"

साधारणतया हम सब लोग न 'अबके' होते हैं न 'तबके'। ऐसा बनने का लाभ क्या है? इसलिए तो यह जन्म नहीं मिला कि अबके रहो न तबके। सविता का ध्यान करते समय इन बातों को सोचो। सविता से प्रार्थना करो, "ऐ महाशक्ति! मेरी बुद्धि को प्रेरणा कर! तू इस विशाल विश्व को बनानेवाली है, इस महाप्रकृति को जगानेवाली है, मेरी बुद्धि को जागृत कर दे!"

परन्तु देखो, जब ऐसी प्रार्थना करोगे तो भगवान् पूछेगा, "मुझे तू प्रेरणा करने के लिए कहता है, मैं करूँगा अवश्य, परन्तु क्या तूने भी कभी किसी को प्रेरणा की है? तूने भी किसी का अज्ञान दूर किया है? इतना अज्ञान है संसार में, उसे यदि तूने दूर नहीं किया, उसके एक भाग को भी दूर करने का यत्न नहीं किया तो फिर मुझे किस प्रकार कहता है कि मैं तुझे प्रेरणा करूँ?"

हमारे पूर्वज जब तक सविता-शक्ति की इस ललकार को सुनते रहे, जब तक वे स्वयं सविता-शक्ति से कार्य लेते रहे, तब तक इस पृथिवी पर आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा; दुनिया-भर में एक शासन रहा; एक राष्ट्र रहा। आज भी चीन, जापान, अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका और प्रत्येक देश में इस राष्ट्र के चिह्न मिलते हैं। परन्तु जब से आर्य लोगों ने

सविता-शक्ति से कार्य लेना बन्द कर दिया, तब से यह राष्ट्र सिकुड़ना आरम्भ हुआ, सिकुड़ते-सिकुड़ते एक छोटा-सा देश रह गया।

सीधी-सी बात है कि जब मैं ईश्वर को सविता कहता हूँ, तो मेरा भी कर्त्तव्य है कि दूसरों को प्रेरणा करूँ। उन्हें सत्य मार्ग की ओर लेजाने का यत्न करूँ। सत्यमार्ग क्या है, यह बताने में कभी कसर न करूँ। भगवान् विष्णु का चित्र तो आपने देखा है। वास्तव में यह चित्र नहीं। भगवान् का चित्र नहीं बन सकता, केवल एक कार्टून है लोगों को समझाने के लिए। चार भुजाएँ हैं विष्णु की। इसकी सबसे पहली भुजा में शंख पकड़ा हुआ है। यह शंख क्या है ? प्रचार-शक्ति। आजकल के समय में रेडियो, समाचारपत्र, टेलीविज़न, किताबें, पोस्टर। विष्णु का अर्थ है सर्वव्यापक। जो जाति सर्वव्यापक होना चाहती है, उसके लिए आवश्यक है कि एक दृढ़ शंख उसके पास हो। अपने सत्य विचारों का प्रचार करने की शक्ति उसके पास हो। घरों से बाहर निकलो ! अपनी संस्कृति के शंख को ज़ोर से बजाओ ! प्रचार करो उसका ! आप कहेंगे, "आनन्द स्वामी ! तू तो हो गया संन्यासी, निकल गया घर से बाहर। हम कैसे निकलें ?" अरे भाई ! घर से बाहर नहीं निकल सकते, तो वेद-प्रचार के लिए धन तो दे सकते हो ! तुम्हारे लिए धन देना ही सविता-शक्ति से कार्य लेना है।

परन्तु ये सब बातें मैं आपको क्यों कहता हूँ ? केवल यह बताने के लिए कि गायत्री मन्त्र केवल जाप करने की वस्तु नहीं, आचरण करने की वस्तु है। कई लोग कहते हैं, "गायत्री का जाप कैसे करें ? बहुत कठिन है।" कई और व्यक्ति कहते हैं, "नहीं, कठिन नहीं, सरल है; हमने सवा लाख गायत्री का जाप किया।" किया होगा अवश्य, परन्तु किस

प्रकार किया आपने जाप ? मन्त्र को बार-बार पढ़ने से तो कुछ होता नहीं। वास्तविक बात है आचरण। गायत्री का जाप करो, गायत्री पर आचरण भी करो, तभी यह जाप सफल होगा। सोचो कि संसार को तुमसे क्या लाभ है ? सोचो कि दूसरों का भला कैसे होगा ? प्रार्थना करो कि देश का कल्याण हो, संसार का कल्याण हो। यह बात विशेषकर इन माताओं को कहता हूँ। देवियों की बात ईश्वर जल्दी सुनता है। देवियों में श्रद्धा होती है अधिक। योग की जो क्रियाएँ पुरुष पन्द्रह मास में भी नहीं सीख पाते, देवियाँ उन्हें पाँच ही मास में सीख लेती हैं। पुरुष तो हर समय सन्देह ही करते रहते हैं ; उस बुद्धि को दौड़ाते रहते हैं जो वास्तव में है नहीं। इसलिए मैं देवियों से कहता हूँ, प्रार्थना करो कि इस देश का कल्याण हो, संसार का कल्याण हो।

शेष बातें कल बताऊँगा, परन्तु कल के लिए एक विशेष बात भी कहना चाहता हूँ। कल कथा का अन्तिम दिन है, अन्तिम दिन दान दिया जाता है। मैं हूँ संन्यासी, भीख माँगना मेरा अधिकार है। मैं भी कुछ माँगूँगा अवश्य। आप अपने साथ लेकर आइये। आप कहेंगे, "आनन्द स्वामी ! तू भी लोभी हो गया है।" कुछ भी कहिये, परन्तु लूँगा अवश्य। माँगूँगा अवश्य। धन नहीं माँगूँगा, दौलत नहीं माँगूँगा, मकान, कोठियाँ, बँगले नहीं माँगूँगा, मोटरें और गाड़ियाँ नहीं माँगूँगा, अनाज के भण्डार नहीं माँगूँगा, फिर भी माँगूँगा अवश्य। वह वस्तु माँगूँगा जो मनुष्य के काम नहीं आनी चाहिए, जो आपके काम नहीं आती, फिर भी आपके पास है अवश्य। कल सावधान होकर आइये, इस वस्तु की गठड़ियाँ बाँधकर ले आइये। मैं फ़कीर हूँ, माँगूँगा अवश्य।

ओ३म् तत् सत् !

सातवाँ दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

कल मैं सविता की बात कर रहा था और बता रहा था कि सविता सूर्य को भी कहते हैं। सविता ईश्वर की प्रेरणा करनेवाली शक्ति है—सृष्टि को उत्पन्न करनेवाली शक्ति, सबको पालनेवाली माँ है और अन्त में सबको अपनी गोद में लेकर सुला देनेवाली महाशक्ति। सूर्य तो प्रातःकाल के समय संसार को जगाकर उसे नवजीवन देता है, दिनभर उसे प्रकाश देता है, सायंकाल कहता है, "विश्राम करो, अब सो जाओ। कल प्रातः मैं तुमको नया जीवन दूँगा, नया प्रकाश दूँगा।"

परन्तु आजकल तो कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जिनके लिए सूर्य सविता रहा नहीं। रात्रि बनाई गई थी इसलिए कि मनुष्य विश्राम करे, थकावट दूर करे, दूसरे दिन विश्रांत होकर, सूर्य से प्रेरणा पाकर फिर कार्य में जुट जाये। परन्तु ये सज्जन जिनकी बात मैं करता हूँ, प्रातःकाल के समय उठने का नाम ही नहीं लेते ; और फिर उठें किस प्रकार ? रात्रि के एक-एक और दो-दो बजे तक तो ये 'रमी' खेलते रहते हैं। अफ्रीका में जाकर मुझे पता लगा कि रमी भी कोई खेल होता है। जो व्यक्ति रात्रि के एक-एक और दो-दो बजे तक जागता रहेगा, वह प्रातः यदि सोयेगा नहीं तो उठेगा कैसे ? शास्त्र कहता है कि सूर्य निकलने से दो घड़ी पूर्व शैया त्याग देनी चाहिए। नहा-धोकर उषा का स्वागत करना चाहिए। यह उषा चार वस्तुएँ लेकर आती है, उन्हें बाँटती हुई चली जाती है—बल देती है, वह बुद्धि देती है, धन देती है और यश प्रदान करती है। जो जागते हैं वे इन चारों वस्तुओं को

प्राप्त करते हैं; जो सोये रहते हैं वे इन चारों से वंचित रह जाते हैं। यह है शास्त्र की आज्ञा। अब बताओ, जो लोग सोये रहेंगे उन्हें क्या प्राप्त होगा? सोनेवालों से मैं पूछता हूँ क्या तुम्हें बल नहीं चाहिए? बुद्धि नहीं चाहिए? धन और यश की कामना नहीं है? नहीं चाहिए तो सोये रहो, कुम्भकर्ण की भाँति, परन्तु याद रक्खो—

हर रात के पिछले पहर में, एक दौलत लुटती रहती है।
जो जागते हैं वे पाते हैं, जो सोते हैं वे खोते हैं॥

'खोते हैं' का अर्थ है नष्ट करते हैं, वंचित रह जाते हैं; परन्तु पंजाबी भाषा में 'खोता' गधे को भी कहते हैं। मैं अफ्रीका में था। एक सत्संग में यह दोहा सुनाया तो एक बच्चे ने मेरे पास आकर कहा, "स्वामी जी, मेरे डैडी (पिता जी) भी खोते हैं, वे भी प्रातःकाल देर तक सोये रहते हैं, परन्तु उनका मुख तो मनुष्यों जैसा है?" मुझे यह बात सुनकर हँसी आ गई। पता नहीं आपके बच्चे आपको क्या समझते हैं, परन्तु ठीक विधि यही है कि प्रातः जल्दी उठो। उस प्रभु का स्मरण करो जिसने उत्पन्न किया है, जो सदा काम आया है, सर्वदा काम आयेगा। उसके सविता-रूप का ध्यान करो, प्रेरणा माँगो उससे, और विश्वास रक्खो यह प्रेरणा मिलेगी।

सविता के पश्चात् गायत्री मन्त्र में एक और शब्द है, भर्गः। जो व्यक्ति इसका अर्थ जानते हैं, जो इसके अन्दर छिपे हुए रहस्य से परिचित हैं, उनके लिए यह शब्द अनन्त सन्तोष का देनेवाला है। यह संसार तो फिसलनी घाटी है न? कई बार मनुष्य फिसल जाता है। इच्छा न होते हुए भी फिसल जाता है। स्वयं न फिसले तो दूसरे धक्का दे देते हैं। स्वच्छ-पवित्र कपड़े पहनकर आप घर से बाहर निकलते हैं, कोई बुद्धिमती बहू ऊपर से कूड़ा-करकट फेंक देती है।

बुद्धिमती बहू की बात तो आपने सुनी होगी। बहुत

अभिमान था उसे कि मैं सब-कुछ जानती हूँ। जानती कुछ नहीं थी। एक दिन पति से बोली, "आप कहें तो मैं हलवा बना लूँ ?" पति ने कहा, "भाग्यवान् ! तुझे हलवा बनाना आता नहीं, तुमसे बनेगा नहीं।" बहू ने कहा, "बनेगा कैसे नहीं, मैं अभी बनाये देती हूँ।" और चूल्हे पर बर्तन रखकर उसने बर्तन में घी, खाण्ड, आटा, पानी सब डाल दिया। अब वह हलवा कैसे बनता ? बहू ने कहा, "वास्तव में हलवा तो नहीं बना, आप कहें तो सीरा बना लूँ ?" पति ने कहा, "तुमसे सीरा भी नहीं बनेगा।" बहू बोली, "बनेगा कैसे नहीं, थोड़ा-सा पानी और डाल देती हूँ, बन जायेगा।" पानी डालकर देर तक बैठी रही, कुछ हुआ नहीं ; बोली, "सीरा तो नहीं बना, आप कहें तो लप्सी बना लूँ ?" पति ने कहा, "देवी, तुझसे लप्सी भी नहीं बनेगी।" बहू को क्रोध आ गया। अग्नि प्रदीप्त कर दी। सब-कुछ जल गया। वह बोली, "यह तो सब जल गया है, कहें तो इसे फेंक दूँ ?" पति ने कहा, "तुझे फेंकना भी नहीं आयेगा।" वह बोली, "वाह ! फेंकने में क्या है, मैं अभी गली में फेंक देती हूँ।" पति ने कहा, "किसी भले मनुष्य को देखकर फेंकना।" वह बर्तन उठाकर फेंकने गई, विलम्ब हो गया, आई नहीं। पति को चिन्ता हुई कि स्वयं न गिर पड़ी हो। उठकर देखने गया, तो सामने आती हुई मिली; पूछा, "इतना विलम्ब क्यों कर दिया ?" वह बोली, "आपने कहा था न किसी भले मनुष्य को देखकर फेंकना, सो बहुत देर प्रतीक्षा करती रही, कोई भला मनुष्य निकला ही नहीं। अन्त में गाँव का चौधरी निकला बहुत श्वेत कपड़े पहने हुए, मैंने उसी के सिर पर फेंक दिया।"

सो इस प्रकार भी कभी-कभी होता है, न चाहते हुए भी कोई 'बुद्धिमती बहू' श्वेत कपड़ों पर कूड़ा-करकट डाल देती

है। यह संसार तो फिसलनी घाटी है न ? यहाँ त्रुटि होना असम्भव नहीं। त्रुटियाँ होती हैं, मनुष्यों से होती हैं, बड़ों से, बूढ़ों से, नवयुवकों से, ऋषियों से भी त्रुटियाँ होती हैं।

परन्तु यह भर्गः कहता है, "घबरा नहीं। भूल हो गई तो चिन्ता न कर, मैं तेरे पाप जला दूंगा।" भर्गः का अर्थ है ज्योतिवाला—ऐसी ज्योतिवाला जिससे बड़ी और कोई ज्योति नहीं। इसके साथ ही 'देवस्य' का शब्द है। इसका अर्थ है देनेवाला, आनन्द देनेवाला, सुख देनेवाला; वह प्रत्येक वस्तु देनेवाला जिसकी कोई इच्छा कर सकता है। उसका कोश अनन्त है, उसका भण्डार कभी रिक्त नहीं होता। कई अरब, कई खरब वर्षों से वह दिये जाता है; कई अरब, कई खरब वर्षों तक दिये जायेगा। उसके देने का आदि नहीं है, उसके देने का अन्त नहीं है। कई लोग कहेंगे, हम तो माँग-माँगकर थक गये, हमें तो देता नहीं। अरे देता है वह सबको, प्रातः से सायं तक, सायं से प्रातः तक, जन्म से मृत्यु तक, मृत्यु से दूसरे जन्म तक। उसके देने का अन्त नहीं, परन्तु लेनेवाले का बर्तन ही टूट गया हो तो उसे मिलेगा क्या ? माँगने से पूर्व इस बर्तन को ठीक करो। इस बर्तन का नाम है अन्तःकरण। इसे ठीक करके देखो। इसमें जो छिद्र तुमने बना दिये हैं उन्हें बन्द करके देखो। वह अवश्य देता है, उसके देने का अन्त नहीं है। इस 'देवस्य' के साथ ही एक और शब्द है 'वरेण्यम्'। इस शब्द को बोलते ही होंठ बन्द हो जाते हैं। बाहर का संसार बाहर रह जाता है, अन्दर का संसार जाग उठता है। ओष्ठों के बन्द होने का तात्पर्य यह है कि अब और कुछ कहने को शेष नहीं, कहने की आवश्यकता नहीं। तू वरेण्यम् =वरने के योग्य है, पूजा के योग्य है। तेरी पूजा ही वास्तविक पूजा है। मैंने तुझे पा लिया, अपने-आपको तेरे अर्पण कर दिया। अब भक्त की इस नौका को तार दे या डुबा दे,

किनारे पर ले चल या मँझदार में डुबो दे, यह तेरी इच्छा है, मैंने अपने-आपको तेरे ऊपर छोड़ दिया।

इसी को योगदर्शन ने 'ईश्वर-प्रणिधान' कहा। इसी को नारद ने 'अनन्य भक्ति' कहा है। इसी को महर्षि दयानन्द ने 'उपासना' का नाम दिया है और गीता ने 'शरणागति' कहा। इसके सम्बन्ध में ऋषि ने कहा—

धर्मार्थकाममोक्षाणां ज्ञानवैराग्ययोरपि।
अन्तःकरणशुद्धये भक्तिः परमसाधनम्॥

ऐसी भक्ति हो तो फिर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी मिलते हैं। परन्तु ऐसी भक्ति केवल कहने से तो नहीं होती। मैं हो गया किसी का सेवक। कह दिया कि मैं आपका सेवक हूँ, आप मेरे स्वामी हैं। स्वामी ने कहा, "भाई! तनिक कमरे में झाड़ू दे दो।" मैं कहूँ, "अच्छी बात है, श्रीमन्! दे दूँगा।" एक घण्टे पश्चात् स्वामी पूछे, "झाड़ू दे दिया?" मैं कहूँ, "अभी दिये देता हूँ श्रीमन्!" दो घण्टे के पश्चात् वह पूछे, "कमरा साफ़ हो गया?" मैं कहूँ, "बस, करने ही लगा हूँ, स्वामिन्!" तीन घण्टे के पश्चात् वह फिर पूछे, पाँच घण्टे के पश्चात् पूछे, दूसरे दिन पूछे, तीसरे दिन, पाँचवें दिन, प्रत्येक बार मैं यही उत्तर दूँ कि "अभी साफ़ किये देता हूँ कमरा, अभी झाड़ू लगाए देता हूँ।" तो स्वामी मेरे-जैसे नौकर का क्या करेगा? यह तो सेवा नहीं है। सेवा तो वह है जो स्वामी की आज्ञा होते ही कर दी जाये। यह है भक्ति का अर्थ। केवल कीर्तन करने, नाम जपने, माला फेरने या संन्यास धारण करके जंगल में चले जाने का नाम भक्ति नहीं। भक्ति वह है जिसे मनुष्य संसार के सारे कार्य करता हुआ, समस्त कर्त्तव्यों को पूर्ण करता हुआ निरन्तर करता रहे। सब-कुछ करे, परन्तु अपने प्यारे प्रभु को न भूले। उसकी आज्ञा को देखे, उसकी आज्ञा के समक्ष सिर झुका दे।

कई व्यक्ति मुझे कहते हैं, "आनन्द स्वामी, हम भी तेरे साथ गंगोत्री चलेंगे।" मैं कहता हूँ, "अवश्य चलना, परन्तु पहले अपने कर्त्तव्य को तो पूरा कर लो!" पिछले वर्ष करौलबाग के एक सज्जन ने बड़े विस्तार के साथ मुझसे गंगोत्री का मार्ग पूछा। मैंने बता दिया। वे बोले, "मैं इस वर्ष अवश्य जाऊँगा।" परन्तु वर्ष बीत गया, वे नहीं आए। पिछले दिनों वे मुझे मिले। मैंने कहा, "भाई! आप गंगोत्री नहीं आए?" वे बोले, "अभी तैयार हो रहा हूँ।" जो लोग वर्ष-भर तैयार होने में ही लगा दें, उन्हें कोई क्या कहे! इस प्रकार भक्ति नहीं होती। भक्ति तो अपने फल से पहचानी जाती है। उत्सव होते हैं, कीर्तन होते हैं, सत्संग होते हैं, उपदेश दिए जाते हैं, ये सब ठीक हैं, परन्तु यदि इनके पश्चात् भी इनमें सम्मिलित होनेवाले के मन में चिन्ता है तो कहना होगा कि वह व्यक्ति भक्ति के मार्ग पर नहीं चला। भक्ति के विषय में तो कहा है—

जब ही नाम हृदय लियो, भयो पाप का नाश।
जैसे चिनगी आग की, पड़ी पुरानी घास॥

पाप न रहे तो चिन्ता रहती नहीं। चिन्ता रहे तो इसका अर्थ है कि भक्ति हुई नहीं, नाम को हृदय में धारण नहीं किया।

एक कथा समझाने के लिए सुनाया करता हूँ, आपको भी सुनाता हूँ। नारद मुनि एक बार घूमते-घूमते स्वर्ग में गए। वहाँ विष्णु महाराज विराजमान थे। उन्होंने पूछा, "सुनाओ मुनिराज! संसार का क्या हाल है?" नारद ने कहा, "महाराज, मैं तो आपसे पूछने लगा था कि आप कैसे भगवान् हैं। दुनिया में हर स्थान पर लोग आपको याद कर रहे हैं, स्थान-स्थान पर कीर्तन होते हैं, उपदेश होते हैं, मन्दिरों में आपकी पूजा होती है, लोग आपको पुकारते हैं

ग्रौर ग्राप यहाँ निश्चिन्तता से बैठे हैं।" विष्णु महाराज ने कहा, "तू भोला है नारद ! लोग मुझे नहीं चाहते, किसी ग्रौर को चाहते हैं।" नारद ने कहा, "यह कैसे हो सकता है ? मैंने तो देखा है कि वे ग्रापके दर्शनों को बेचैन हैं। एक बार चलकर उन्हें दर्शन दे ग्राइये।" विष्णु महाराज ने कहा, "नहीं नारद ! वे लोग मेरा दर्शन नहीं चाहते। केवल कहने की बात है यह। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो कुछ विमान ले जाग्रो। जो दर्शन करना चाहता है, उसे यहाँ ले ग्राग्रो। मैं स्वर्ग के द्वार पर खड़ा रहूँगा, वे मेरे दर्शन कर सकेंगे।" नारद ने कुछ विमान लिये। एक नगर के बाहर उन्हें पृथिवी पर उतार दिया। नगर में प्रविष्ट नहीं हुए (निश्चय ही वह करौलबाग में प्रविष्ट नहीं हुए, यहाँ तो बहुत-से भक्त लोग रहते हैं)। एक स्थान पर गए। विचारने लगे—किसको स्वर्ग चलने ग्रौर भगवान् का दर्शन करने को कहें ? सामने से कोई ४५ वर्ष के एक सज्जन ग्राते हुए दृष्टिगोचर हुए। बार-बार भगवान् का नाम ले रहे थे। नारद ने सोचा, यह व्यक्ति है इसे ले चलता हूँ। बोले, "श्रीमान् जी ! प्रभु का दर्शन करोगे ? करना हो तो मेरे साथ ग्राग्रो, मैं तुम्हें ईश्वर-दर्शन करा सकता हूँ।" उस व्यक्ति ने प्रसन्न होकर कहा, "प्रभु का दर्शन ? प्रभु का दर्शन मिल जाये बाबा, तो ग्रौर मुझे चाहिए क्या !" नारद बोले, "तो फिर ग्राग्रो मेरे साथ। नगर के बाहर विमान खड़ा है, उसमें बैठो, मैं तुम्हें प्रभु के दर्शन कराऊँगा।" वह व्यक्ति बोला, "मैं चलूँगा ग्रवश्य, नारद जी ! परन्तु ग्राठ दिन के पश्चात् मेरे पुत्र का विवाह होनेवाला है, वह हो जाये तो फिर ग्रवश्य चलूँगा।" नारद महाराज ग्राठ दिन के स्थान पर पन्द्रह दिन के पश्चात् ग्राये; बोले, "तुम्हारे पुत्र का विवाह हो गया होगा ?" वह बोला, "जी महाराज ! ग्रापकी कृपा से बहुत सुन्दर बहू

मिली है। बहुत उत्तम रीति से विवाह हुआ।" नारद ने कहा, "तो आओ फिर चलें!" उसने कहा, "अभी-अभी तो विवाह हुआ है। बहू की गोद हरी हो जाये, एक बच्चा हो जाये तो फिर मैं अवश्य चलूँगा।" नारद बोला, "अच्छा यूँ ही सही।" एक वर्ष पश्चात् नारद फिर आये; बोले, "बच्चा हो गया भक्त जी?" भक्त जी बोले, "हाँ महाराज! बहुत सुन्दर बच्चा है, मोटी-मोटी आँखें हैं उसकी, बटर-बटर देखता है, मेरी अँगुली पकड़ लेता है।" नारद ने कहा, "तो आओ अब चलें!" भक्त ने कहा, "परन्तु अभी तो बच्चा बहुत छोटा है। उसे कुछ बड़ा हो लेने दो, फिर चलूँगा।" नारद 'बहुत अच्छा' कहकर चले गए। पाँच वर्ष पश्चात् फिर आये। बच्चा बड़ा हो गया था; बोले, "चलो भक्त, अब चलें।" भक्त ने कहा, "नहीं महाराज! अभी तो केवल पाँच ही वर्ष का है। मेरा पुत्र है मूर्ख, उसकी देखभाल नहीं कर सकता। कुछ वर्ष और ठहर जाइये, इस बच्चे को बुद्धिमान् हो जाने दीजिये।" नारद वापस चले गये; दस वर्ष पश्चात् पुनः आये। बच्चा जवान हो गया था, भक्त बूढ़ा। उसकी कमर टेढ़ी हो गई थी, आँखें बन्द, लाठी टेककर चलता था। नारद ने कहा, "अब तो चलो! अब तो बहुत विलम्ब हो गया।" बूढ़े भक्त ने चिल्लाकर कहा, "यह तुम बार-बार मेरे ही पास क्यों आते हो? इतना बड़ा संसार है, किसी दूसरे को पकड़कर ले जाओ। क्या मैं ही स्वर्ग जाने के लिए रह गया हूँ?" नारद की आँखें खुल गईं। दुःख से बोले, "भगवान् ठीक कहते थे, उन्हें कोई नहीं चाहता।"

यह है भक्तों की दशा! अरे सुनो! धोखे में पड़ा है संसार, व्यापार करता है, भक्ति करना नहीं चाहता। चहुँ ओर अशान्ति की धधकती हुई ज्वालाएँ जल रही हैं। इनसे बाहर निकलने की इच्छा नहीं उसको, केवल उन वस्तुओं की

कामना है, जो नष्ट होनेवाली हैं। निश्चय ही यह वह भक्ति नहीं, जिसकी चर्चा 'वरेण्यम्' में की गई है। यह तो बिल्कुल व्यापार है। आज लोग कहते हैं, "इतने घण्टे जाप किया, इसके बदले में हमें क्या मिलेगा ?" कुछ नहीं मिलेगा। याद रक्खो ! यह जाप नहीं, व्यापार है।

महाराज युधिष्ठिर और उनके भाई अज्ञातवास में दुःख भोग रहे थे। जंगलों में मारे-मारे फिरते थे। एक दिन द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा, "महाराज ! आप इतने बड़े भक्त हैं, ईश्वर में इतनी श्रद्धा रखते हैं, उनसे प्रार्थना क्यों नहीं करते कि इन कष्टों को दूर कर दें ?" युधिष्ठिर बोले, "द्रौपदी ! मैं ईश्वर से प्यार करता हूँ तथा उसकी भक्ति करता हूँ तो व्यापार के लिए नहीं, कुछ माँगने के लिए नहीं, केवल इसलिए करता हूँ कि इस भक्ति से मुझे सन्तोष मिलता है। सामने वह सुन्दर पहाड़ है, उसके वे झूमते हुए वृक्ष, उजली-उजली बर्फ़, बर्फ़ से होकर आता हुआ, ऊपर से गिरकर बहता हुआ पानी—इसे देखने से सुख मिलता है, आँखों को सन्तोष होता है। इससे कभी कोई कुछ माँगता नहीं है। इसी प्रकार मैं भी ईश्वर की भक्ति करता हूँ।"

परमहंस श्री रामकृष्ण जी महाराज जीवन के अन्तिम दिनों में रुग्ण-से हो गये। गले के अन्दर कैंसर हो गया उन्हें। डॉक्टरों ने चिकित्सा की, वे स्वस्थ नहीं हुए। रुग्णता बढ़ती गई। कलकत्ता के प्रसिद्ध विद्वान् दुःखी होकर उनके पास आये; बोले, "डॉक्टर हार गए, योगिराज ! अब केवल एक उपाय रह गया है। आप तीन बार कह दीजिये 'बीमारी दूर हो जाये' तो बीमारी चली जाएगी। तीन बार माँ से प्रार्थना कर दीजिये, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं।" श्री रामकृष्ण उस समय ठीक प्रकार से बोल नहीं सकते थे। कष्ट से बोले, "शशिधर ! माँ से क्या मैं ऐसी बात कहूँ ? क्या

माँ को स्वयं पता नहीं कि मेरे लिए अच्छा क्या है और बुरा क्या है ? जो वह उचित समझती हैं वही करती हैं । मैंने उनसे कभी कुछ माँगा नहीं, मैं उनसे कुछ माँगूँगा नहीं ।"

यह है सच्चे भक्त की पहचान ! वह व्यापार नहीं करता, 'वरेण्यम्' कहकर अपने-आपको ईश्वर के अर्पण कर देता है ।

और जब इस प्रकार वह अपना सब-कुछ ईश्वर पर छोड़ देता है, जब उसे 'सविता, भर्गः, देव और वर' रूप में अपना लेता है तो उसके अंतःकरण के अन्दर एक महान् ज्योति जाग उठती है ।

जो लोग ईश्वर-भक्ति करना चाहते हैं, उनसे मेरी प्रार्थना है कि 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' के उपासना काण्ड को ध्यान-पूर्वक पढ़ें, उसमें उन्हें सब-कुछ मिलेगा । कई बार मैं आश्चर्य के साथ सोचता हूँ कि सब-कुछ तो हमारे पास है, फिर हम भटकते क्यों फिरते हैं ? फिर भी भूख-भूख क्यों चिल्लाते हैं ? याद रक्खो—

भीखा भूखा कोई नहीं, सबकी गठड़ी लाल ।
गाँठ खोल नहीं देखते, ता विधि भये कंगाल ।।

अरे घबराओ नहीं ! चिन्ताओं की जिस गठरी को उठाये फिरते हो, उसे उतार फेंकने का उपाय विद्यमान है–पहले मन की एक गठरी को खोलो ; आँखों पर आये पर्दे को दूर कर दो ; जो तुम्हारे पास है उसे देखो । 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' में महर्षि कहते हैं—

"योग करनेवाले मनुष्य तत्त्व अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान के लिए जब अपने मन को पहले परमेश्वर में युक्त करते हैं, तब परमेश्वर उनकी बुद्धि को अपनी कृपा से युक्त कर देता है, फिर वे मनुष्य परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके यथार्थ धारण करते हैं, पृथिवी के बीच एक योगी का यही प्रसिद्ध लक्षण है ।"

इस प्रकार एक अद्भुत प्रकाश अन्तःकरण में जाग उठता है। जैसे ही भक्त 'धीमहि' कहता है, वैसे ही, यदि उसका ध्यान ठीक है, यदि उसने 'सविता और 'भर्गः' के अर्थों को समझा है तो एक चमकता हुआ, करोड़ों सूर्यों को प्रकाश देनेवाला एक महान् सूर्य उसके अन्दर जाग उठता है।

प्रारम्भ में यह ज्योति दिखाई नहीं देती; यह तो अभ्यास की वस्तु है। गायत्री मन्त्र का देवता सविता है। इसीलिए जाप करते समय सूर्य-जैसे प्रकाश का ध्यान करना चाहिए। बारम्बार ध्यान करने से, बारम्बार अभ्यास करने से अन्तःकरण का दोष दूर होता है। यह दोष तीन प्रकार का है: एक मल है, दूसरा विक्षेप, तीसरा आवरण। मल निष्काम सेवा से दूर होता है, विक्षेप भक्ति से, आवरण ज्ञान से। तीनों जब दूर हो जायें, तब अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र होता है, तब एक जगमगाता हुआ श्वेत प्रकाश उसके अन्दर जाग उठता है। जागते ही वह पूछता है, "माँग, क्या माँगता है?" उस समय मोटर-गाड़ियाँ, पशु, रिश्तेदार, बेटे, धन और धान्य नहीं माँगना—ये सब वस्तुएँ तो नष्ट होनेवाली हैं, यहीं रह जानेवाली हैं। उस समय वह वस्तु माँगना जिससे यह लोक और परलोक दोनों सुधर जायें। उस समय कहना—

धियो यो नः प्रचोदयात्।
ऐसी कृपा कर ऐ महाशक्ति!
ऐ महाज्योति! मेरी बुद्धि तेरी ओर चले।

यह शरीर है न! अच्छी वस्तु है। परन्तु यह तो केवल एक मोटर है, उस महाराज के पास पहुँचने के लिए जिसके अतिरिक्त और कहीं भी सुख नहीं। हमारा लक्ष्य वह है, वहाँ पहुंचना है हमें। शरीर की इस मोटर में बैठकर पहुँचना है। परन्तु पहुँचना वहीं है—लक्ष्य वह है। आत्मा यात्री है, शरीर रथ है। और शेष सब-कुछ, यह धन-धान्य, पत्नी,

मकान, बच्चे, मित्र, सम्बन्धी, देश, जाति और राष्ट्र केवल यात्रा की सामग्री हैं—रास्ता काटने का सामान। परन्तु यदि हम यात्री की सामग्री जुटाने में ही लगे रहें, रास्ता भूल जायें, लक्ष्य को भूल जायें तो फिर हमें बुद्धिमान् कौन कहेगा ?

एक था प्रधानमन्त्री। बहुत बड़े देश का प्रधानमन्त्री था वह। बहुत-कुछ उसके अधीन था। एक दिन वह एक नगर में पहुँचा। पता किया कि नगर का सबसे बड़ा चौधरी कौन है। नाम ज्ञात करके अपने ड्राइवर को बोला, "ड्राइवर ! मेरी मोटर को ले जाओ, चौधरी साहब को ले आओ, कहना मैं उन्हें मिलना चाहता हूँ।" ड्राइवर गया, चौधरी साहब को आवाज़ दी। बोले, "क्या बात है ?" ड्राइवर ने कहा, "आपको प्रधानमन्त्री ने बुलाया है, आपके लिए मोटर भेजी है।" चौधरी साहब मोटर में बैठे; बोले, "प्रधानमन्त्री के पास तो चलना ही है, तनिक हमें नगर का भ्रमण तो करा दो।" ड्राइवर ने बहुत अच्छी तरह भ्रमण करा दिया। चौधरी साहब बोले, "देखो, वह सामनेवाले सिनेमा-हाल में बहुत अच्छी पिक्चर लगी है। जाना तो है ही, तनिक ठहरकर चले जायेंगे। चलो, वह पिक्चर देख आयें।" तीन घण्टे बीत गए। सिनेमा-हाल से निकले तो बोले, "शहर में एक सरकस आया है, चलो उसे भी देखें।" उसे भी देखा। रात हो गई अधिक; बोले, "अब तो मैं थक गया। कहीं निकट कोई अच्छी दुकान या होटल हो तो कोई ड्रिंक-विंक ले लें।" ड्राइवर ने कहा, "श्रीमान्, वह सामने होटल है, वहाँ बहुत अच्छी लाल रंग की शराब मिलती है।" चौधरी साहब वहाँ पहुँच गये, शराब-पान करने के लिए।

देखो, मैं शराब को बुरा नहीं समझता। मेरी ओर से एक के स्थान पर दो बोतल पियो, परन्तु एक शर्त है, ऐसी शराब पियो जो फिर उतरे नहीं। ऐसी शराब क्या हुई, जो प्रातः

पियो तो सायं नहीं, सायं पियो तो प्रातः नहीं। और सुनो! ऐसी शराब भी है जिसका नशा कभी उतरता नहीं। मैं उसी शराब का एजेण्ट हूँ, उसको बेचता हूँ। दूसरी शराब केवल गिरावट को जगाती है। ऐसी शराब को पीनेवाला चिल्लाकर कहता है—

शराब पीकर उतरने वाली पिलाई तो क्या पिलाई साकी!
जो चढ़के इक बार फिर न उतरे
वो मय पिलाये तो हम भी जानें॥

पीनी है तो ऐसी शराब पियो जो एक बार पी लेने के पश्चात् फिर उतरे नहीं। मैं उसी शराब की बात करता हूँ जिसके सम्बन्ध में गुरु नानकदेव जी ने कहा था—

भंग भसूड़ी सुरापान, उतर जाये प्रभात।
नाम ख़ुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन रात॥

परन्तु जिन चौधरी साहब की बात मैं कह रहा हूँ, उन्हें तो इस नाम-खुमारी की आवश्यकता थी नहीं। वह तो इच्छुक थे लाल परी के। गए होटल में। प्याले के पश्चात् प्याले पीने लगे। बेहोश हो गये तो होटलवालों ने उठाकर बाहर नाली में फेंक दिया। प्रधानमन्त्री के ड्राइवर ने जब देखा कि चौधरी साहब तो उठने का नाम ही नहीं लेते तो अर्ध-रात्रि के समय खाली मोटर लेकर प्रधानमन्त्री के पास पहुँच गया। प्रधानमन्त्री ने पूछा, "अरे, तुझे तो चौधरी को लेने के लिए भेजा था, वह कहाँ है?" ड्राइवर ने सारी कहानी सुनाते हुए कहा, "श्रीमन्! वह तो औंधे मुँह नाली में पड़ा है। अपने-आप का भी होश नहीं उसे, आप उससे बात क्या करेंगे!" प्रधानमन्त्री ने क्रोध से कहा, "मरने दो पापी को, कल उसे मोटर नहीं भेजी जायेगी।"

अरे ओ मानव! यह मोटर तो भगवान् ने भेजी थी इसलिए कि तू उसके पास पहुँच सके। तू इसको कहाँ-कहाँ

लिये घूमता है ? कहाँ अपना समय नष्ट कर रहा है ? अरे जाग, नहीं तो तेरा राजा रूठ जायेगा। मोटर चली जायेगी वापस और तू गन्दी नालियों में लुढ़कता फिरेगा। जाग, अभी समय है।

संसारवाले कहते हैं, हम दुःखी हो गये। लोग दोष देते हैं ईश्वर को, कहते हैं, "क्या ईश्वर है वह, कभी ओले भेज देता है, कभी भूकम्प, कभी अकाल, कभी बाढ़।" अरे, ईश्वर नहीं भेजता इनको, तुम्हारे कर्म भेजते हैं। उपनिषद् कहा है—

कृतं लोकं पुरुषोऽभिजायते।

'अपने अन्तःकरण में जैसी दुनिया मैं बनाता हूँ, वैसी वह मुझको मिलती है।' हमारे कर्मों का फल है, जो हमारे सामने आता है; कोई दूसरा इसके लिए उत्तरदायी नहीं। कर्म के मार्ग पर ले-जानेवाली है बुद्धि। इसलिए अन्तःकरण में जब वह महान् ज्योति जाग उठे, वह प्रचण्ड सूर्य चमक उठे, तब प्यार से, श्रद्धा से, विश्वास से कहो—

धियो यो नः प्रचोदयात्।

'मुझे वह बुद्धि दे जो तेरी ओर ले जाए, तेरी ओर चलें, सदा तेरी ही ओर।'

यह है गायत्री मन्त्र। इसमें स्तुति, उपासना और प्रार्थना तीनों विद्यमान हैं। इसमें वह बात है जो मनुष्य को उसके लक्ष्य की याद दिलाती है।

सामवेद के ५१वें मन्त्र में इस लक्ष्य की चर्चा आती है। उसमें लिखा है—

"सुनो ऐ धरती पर रहनेवाले लोगो ! इस माता-रूपी पृथिवी पर रहने के पश्चात् हम यहाँ से लौट जाते हैं और मोक्षधाम के सुख में ठहर जाते हैं। हमें यहाँ प्रभु का उपासक बनना है, प्रकृति का नहीं। अपने को अग्नि—आगे पहुँचाने-वाला—बना। यह संसार खेल का मैदान है।"

इसका अर्थ क्या है ? यह कि हम इस पृथिवी के रहनेवाले नहीं, थोड़ी देर के लिए यहाँ आये, थोड़ी देर के लिए, फिर जाना अवश्य है। हमारा वास्तविक घर वहाँ है, उस परमधाम, मोक्षधाम, ब्रह्मलोक में। यात्री बनकर हम घर से निकल पड़े हैं। वापस घर को जाना है। यात्रा ठीक प्रकार से हो, जल्दी-से-जल्दी अपने घर में वापस पहुँच जायें, यही हमें करना है।

परन्तु क्यों जी, यात्री को क्या करना चाहिए ? क्या यह कि बहुत-सा सामान अपने साथ बाँध ले ? अपने लिए इतनी इच्छाएँ उत्पन्न कर ले कि उन्हें पूरा करने में ही समय बीत जाये ? यात्रा का समय ही न मिले ? नहीं मेरे भाई, इस प्रकार यात्रा नहीं होती; यात्रा पर जाना हो तो कम-से-कम सामान अपने साथ रखना चाहिए। कम-से-कम आवश्यकताएँ होनी चाहिएँ। परन्तु आजकल इस बात को कौन मानता है ? आज का नियम तो यह है कि अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाओ, फिर उन्हें पूरा करने के लिए उद्यम करो। बढ़ाते जाओ आवश्यकताओं को, करते जाओ उद्यम। परन्तु मैं पूछता हूँ, पहुँचोगे कहाँ ? अरे, इतने बड़े-बड़े बँगले बनाये जा रहे हो, इतना बोझ कैसे उठाओगे ? इतनी बड़ी-बड़ी गठड़ियाँ बाँधे जा रहे हो, इन्हें लेकर किस प्रकार आगे बढ़ोगे ? अरे ओ यात्री ! तुझे जाना है दूर। इस मार्ग में कुली नहीं मिलते, सब-कुछ स्वयं ही उठाना पड़ता है। अपनी आवश्यकताओं को कम कर, अपने बोझ को हल्का कर ताकि मार्ग सरलता से कट जाये। परन्तु आवश्यकताओं को कम करने और बोझ को हल्का करने के पश्चात् भी याद रख कि यात्रा में दुःख अधिक होता है, सुख कम। कई लोग कहते हैं, "स्वामी जी ! जीवन में दुःख बहुत हैं।" मैं उन्हें कहता हूँ, "अरे भाई ! तुम ब्रह्मलोक से निकल आये हो, अपने घर से बाहर आ गये

हो, अब दुःख नहीं होगा तो क्या होगा ! दुःख की चिन्ता थी तो घर से निकले क्यों थे ? यात्रा तो यात्रा है। कभी भोजन अच्छा नहीं मिलता, कभी भोजन मिल जाये तो सोने का स्थान अच्छा नहीं मिलता, कभी दोनों मिल जायें तो साथी अच्छे नहीं मिलते। परन्तु घबराओ नहीं, चलते जाओ। अन्त में तुम घर में पहुँचोगे अवश्य, उस परमधाम में जहाँ अनन्त आनन्द तुम्हारे लिए भुजा पसारे खड़ा है।

परन्तु सामवेद का मन्त्र मोक्षधाम को अपना वास्तविक घर कहकर चुप नहीं हो जाता अपितु साधन भी बताता है, जिनको अपनाकर इस परमधाम में पहुँचना सरल हो जाए। इस मन्त्र में कुछ शब्द आते हैं, जिनपर विचार करने से मोक्ष-धाम तक पहुँचने के साधन जैसे सामने आकर खड़े हो जाते हैं। एक शब्द है 'प्रदेवादि दास'। इसका अर्थ है परमात्मा का सेवक बन अर्थात् उसका हो जा। माया के पीछे न भाग। इसकी चकाचौंध करनेवाली, चमचमाती तलवार से अपनी गर्दन न कटा। दूसरा शब्द है 'अग्रने' अर्थात् आगे चल। आगे चलने से लाभ होगा। यात्रा में जितना ही आगे बढ़ेगा, दूसरों से आगे जाने का प्रयत्न करेगा, उतना ही अच्छा स्थान मिलेगा। इसलिए शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़। चलता चल, रुकने का नाम न ले। तीसरा शब्द है 'इन्द्र' अर्थात् परमात्मा के समान शक्तिवाला, प्रभाववाला बन। मरियल टट्टू बन जाने से, हर समय यह कहते रहने से कुछ नहीं होगा, "मैं कुछ नहीं हूँ, मैं कुछ भी तो नहीं कर सकता।" कर सकते हो सब-कुछ, तुम अवश्य करोगे, अपने-आप पर विश्वास रक्खो। अन्त में चौथा शब्द है 'देवः'। बहुत-से अर्थ हैं इसके। एक अर्थ है खेलनेवाला, अर्थात् इस प्रकार चल, इस प्रकार आगे बढ़, जैसे एक खिलाड़ी आगे बढ़ता है। इस संसार को खेल का स्थल समझकर आगे बढ़ता

जा। कवि की भाँति पुकारकर कह—

बाग़ीचए-इतफाल[1] है दुनिया मेरे आगे।
होता है शब[2]-ो-रोज़[3] तमाशा मेरे आगे॥

अरे बच्चों के इस खेल में, संसार के इस तमाशे में रोता-चिल्लाता क्यों हैं? चोट लग गई तो सहन कर, खिलाड़ी बन, हँसता और मुस्कराता हुआ आगे बढ़।

एक दिन कहीं से 'मिलाप' का एक अंक मुझे मिल गया। उसमें रणवीर के लिखे ये शब्द मुझे बहुत अच्छे लगे—

"संसार एक सुन्दर गीत है, प्रत्येक वस्तु यहाँ पर गाती है। आकाश की आँख में तारे गाते हैं। उद्यानों की झीलों में फूल गाते हैं। समुद्र के सीने पर तरंगें गाती हैं। जीवन के किनारे पर मृत्यु गाती है। मृत्यु के उस पार नवजीवन है। हर वस्तु गा रही है, फिर मनुष्य ही पत्थर बनकर क्यों बैठा रहे? क्यों न वह प्रसन्नता से झूम उठे? क्यों न उसके ठहाकों से पृथिवी एवं आकाश गूँज उठें?"

यह है जीवन और उसके आदर्श के सम्बन्ध में उचित दृष्टिकोण! हँसते हुए आगे बढ़ो! मुस्कराते हुए आगे बढ़ो! बढ़ते जाओ, रुको नहीं! अन्त में वह परमात्मा अवश्य मिलेगा।

इन थोड़े-से दिनों में ये सब बातें मैंने आपको बताईं तो इसलिए कि इस दुःखी संसार में कदाचित् कोई इन्हें सुन ले। कदाचित् किसी के हृदय में प्रकाश जाग उठे। इस संसार में रास्ता एक ही है—

असतो मा सद् गमय! तमसो मा ज्योतिर्गमय!
मृत्योर्मा अमृतं गमय।

---

१. क्रीड़ास्थल, २. रात, ३. दिन।

हम कहते हैं जो सत्य है वही ज्योति है, जो ज्योति है वही अमृत है। असत्य ही अन्धकार है, अन्धकार ही मृत्यु। हम मृत्यु से अमृत की ओर जाना चाहते हैं तो यह कार्य बुद्धि के बिना नहीं होगा। बुद्धि चार प्रकार की है—बुद्धि, मेधा, प्रज्ञा, ऋतम्भरा। इन चारों को प्राप्त करने का उपाय गायत्री मन्त्र है। पिछले युगों में सभी महापुरुष इसका जाप करते रहे। किस प्रकार यह जाप किया जाता है, यह मैंने आपको बताया। किस प्रकार उपासना की जाती है, इसके सम्बन्ध में मैंने आपको संकेत रूप में समझाया। सीधी-सी बात यह है कि जब तक आहार शुद्ध न हो, विचार शुद्ध न हो, आचार शुद्ध न हो और व्यवहार शुद्ध न हो, तब तक प्रार्थना होती नहीं। मैं यदि दुःखी का दुःख दूर करने का प्रयत्न नहीं करता, धन पास होने पर भी निर्धन को नहीं देता, शक्ति होने पर भी निर्बल की रक्षा नहीं करता तो आचार से गिरता हूँ। मेरा देश यदि गिरा हुआ है और मैं उसे उठाने का प्रयत्न नहीं करता, यदि मैं लोगों को मिलाने के स्थान पर उन्हें लड़ाने का यत्न करता हूँ तो आचार से गिरता हूँ। आहार की शुद्धि भी बहुत आवश्यक है। जो लोग मांस खाते हैं, अण्डे खाते हैं, लाल मिर्च खाते हैं, बहुत अधिक मसालों का प्रयोग करते हैं, वे गायत्री का जाप नहीं कर सकते; करेंगे तो उसका फल पता नहीं क्या होगा। इन वस्तुओं—आहार, विचार, आचार और व्यवहार—को शुद्ध करने के पश्चात् प्रतिदिन प्रातःकाल उठना चाहिए। प्रातः तीन बजे से छः बजे तक का समय दिन और रात्रि का उत्तमतम समय है। उस समय गंगोत्री, हिमालय और दूसरे स्थानों पर बैठे हुए महात्मा भक्ति और आत्मिक शक्ति की लहरें दुनिया में छोड़ते हैं। चारों ओर ये लहरें फैलती हैं। जो लोग भक्ति करना चाहते हैं, वे लोग इस सहायता को क्यों न लें! उस समय नहा-धोकर, आसन पर

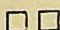
बैठकर, थोड़ी देर के लिए समझना चाहिए कि संसार से, परिवार से, किसी से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। केवल मैं हूँ और वह महाशक्ति। पाँच बार ऊँचे स्वर से गायत्री का जाप करके तब ओष्ठों को बन्द कर लेना चाहिए। गले में जाप करना चाहिए, फिर मन में जाप करना चाहिए। इसके पश्चात् दोनों भौंहों के मध्य में या हृदय में प्रकाश देखने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे अधिक सुन्दर और कुछ नहीं। उस ज्योति को देख लेने के पश्चात् मन डाँवाडोल नहीं होता। ऐसा आनन्द जाग उठता है, जिसका कोई शक्ति वर्णन नहीं कर सकती।

यह सब-कुछ मैंने आपको संक्षेप से बताया। परन्तु अब समय समाप्त हो गया। सात दिन का यह सत्संग भी समाप्त हुआ और जैसा कि मैंने कल आपसे कहा था, कथा के पश्चात् मुझे आपसे कुछ माँगना अवश्य है। मैं हूँ संन्यासी, माँगना मेरा काम है। जब संन्यासी बना और यमुना में स्नान करके कह दिया कि सब-कुछ छोड़ दिया मैंने, तो मेरे पूज्य गुरु स्वामी आत्मानन्द जी ने कहा, "अब झोली फैला और भिक्षा माँग!" आश्चर्य के साथ मैंने सोचा, 'क्या यह भिक्षा भी माँगनी होगी? मेरे पास मोटरें थीं, परिवार था, कारोबार था, लाखों रुपये थे, सबको मैं देता था, सबको छोड़ दिया। क्या अब भिक्षा भी माँगनी होगी?' गुरुजी ने कहा, "हाँ, भिक्षा माँगनी होगी। जो कुछ तेरा था अब वह तेरा नहीं रहा, तू ही सबका हो गया है। तेरे मन का अभिमान न रहे, इसलिए आगे बढ़कर भिक्षा माँग!" मैंने सिर झुकाकर कहा, "जो आज्ञा गुरुदेव! मेरा अभिमान नष्ट हो, मैं भिक्षा माँगूंगा। परन्तु माँगूँ किससे?" गुरुजी बोले, "सबसे पूर्व उस देवी से माँग, जो यहाँ बैठी है आँखों में आँसू भरे हुए।" मेरा हृदय काँप उठा। झोली फैलाकर मैं आगे बढ़ा। उस देवी के पास

जाकर बोला, "देवि ! आज तक तुम्हारे अतिरिक्त दुनिया की सभी स्त्रियों को मैंने माता समझा । आज तुम भी मेरे लिए माता हुईं । कृपा करो, बच्चे की झोली में भिक्षा डाल दो !" तब से मैं भिक्षा माँगने लगा । संन्यास लेकर ऋषिकेश गया तो वहाँ कम-से-कम तीन दिन भिक्षा माँगकर खाने की आज्ञा थी । भिक्षा माँगना मेरा काम है, इसलिए आपसे भिक्षा अवश्य माँगूंगा । आप इतने बड़े व्यक्ति हैं, भिक्षा देंगे, ऐसा मुझे विश्वास है । मैंने आपकी सेवा की है, इसके बदले में ही भिक्षा दे देना ; कृपणता मत करना, देना अवश्य । देखो मैं अपनी झोली फैलाता हूँ । संन्यासी की इस झोली में अपना धन और दौलत मत डालो । मुझे इसकी आवश्यकता नहीं । अपना रुपया-पैसा मत डालो, मैं वह नहीं माँगता । फिर क्या माँगता हूँ मैं ? ओ मेरी दुःखी माताओ ! दुःखी भाइयो ! दुःखी बच्चो ! मैं तुमसे वह वस्तु माँगता हूँ जो तुम्हें बहुत कष्ट दे रही है । अपनी चिन्ताओं को मुझे दे दो ! डाल दो इस झोली में ! कृपणता मत करो ! शाबाश, डालते जाओ ! डालते जाओ सब लोग ! जिस-जिसको जो चिन्ता है, जो दुःख है, जो कष्ट है, जो क्लेश है, वह सब मुझे दे दो प्यारे ! मैं संन्यासी बनकर भिक्षा माँगने आया हूँ ।

देव ! मुझे ही सब दुःख दे दो, जग-जन सारे सुख पायें ।
औरों के जो क्लेश-भोग हों, इस जन के ऊपर आयें ॥

ओ३म् तत् सत् !

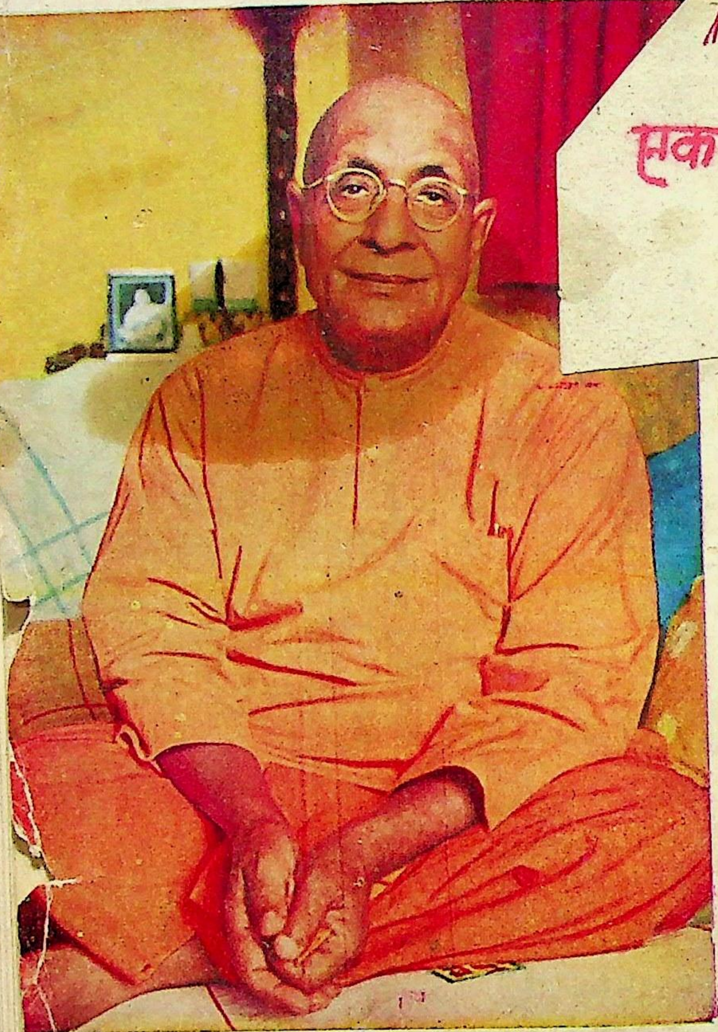


महात्मा आनन्द स्वामी कृत

उत्प्रेरक पुस्तकें

महामन्त्र
दो रास्ते
तत्त्वज्ञान
प्रभु-दर्शन
प्रभु-भक्ति
बोध कथाएँ
सुखी गृहस्थ
एक ही रास्ता
घोर घने जंगल में
मानव जीवन गाथा
भक्त और भगवान्
प्रभु-मिलन की राह
शंकर और दयानन्द
आनन्द गायत्री कथा
उपनिषदों का सन्देश
मानव और मानवता
यह धन किसका है ?
वैदिक सत्यनारायण व्रत कथा
दुनिया में रहना किस तरह ?
श्री म० आनन्द स्वामी सरस्वती (जीवनी)
" " " (उर्दू)
महामंत्र (उर्दू)
The Only Way (अंग्रेज़ी)
Gayatri Discourses (अंग्रेज़ी)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६



महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

गोविन्दराम हासानन्द, नईसड़क दिल्ली-६